

ISSN 0972-5636

भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष 38

अंक 4

अप्रैल 2018



पत्रिका के बारे में

भारतीय आधुनिक शिक्षा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षाविदों, शैक्षिक प्रशासकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों, शिक्षकों, शोधकों एवं विद्यार्थी-शिक्षकों को एक मंच प्रदान करना। शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयामों, जैसे — बाल्यावस्था में विकास, समकालीन भारत एवं शिक्षा, शिक्षा में दार्शनिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य, ज्ञान के आधार एवं पाठ्यचर्या, अधिगम का आकलन, अधिगम एवं शिक्षण, समाज एवं विद्यालय के संदर्भ में जेंडर, समावेशी शिक्षा, शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा हेतु आई.सी.टी. में नवीन विकास, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा का स्वरूप, विभिन्न राज्यों में शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा की स्थिति पर मौलिक एवं आलोचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहित करना तथा शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार एवं विकास को बढ़ावा देना। लेखकों द्वारा भेजे गए सभी लेख, शोध-पत्र आदि का प्रकाशन करने से पूर्व संबंधित लेख, शोध-पत्र आदि का समकक्ष विद्वानों द्वारा पूर्ण निष्पक्षतापूर्वक पुनरीक्षण किया जाता है। लेखकों द्वारा व्यक्त किए गए विचार उनके अपने हैं। अतः ये किसी भी प्रकार से परिषद् की नीतियों को प्रस्तुत नहीं करते, इसलिए इस संबंध में परिषद् का कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

© 2018. पत्रिका में प्रकाशित लेखों का रा.शै.अ.प्र.प. द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित है, परिषद् की पूर्व अनुमति के बिना, लेखों का पुनर्मुद्रण किसी भी रूप में मान्य नहीं होगा।

सलाहकार समिति

निदेशक, रा.शै.अ.प्र.प. : हृषिकेश सेनापति
अध्यक्ष, अ.शि.वि. : राजरानी
अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : एम. सिराज अनवर

संपादकीय समिति

अकादमिक संपादक : जितेन्द्र कुमार पाटीदार
मुख्य संपादक : श्वेता उप्पल

अन्य सदस्य

राजरानी, रंजना अरोड़ा
उषा शर्मा, मधुलिका एस. पटेल
बी.पी. भारद्वाज

प्रकाशन मंडल

मुख्य व्यापार प्रबंधक : गौतम गांगुली
मुख्य उत्पादन अधिकारी : अरुण चितकारा
उत्पादन सहायक : मुकेश गौड़

आवरण

अमित श्रीवास्तव

हमारे कार्यालय

प्रकाशन प्रभाग
एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016

फ़ोन : 011-26562708

108, 100 फ्रीट रोड
होस्करे हल्ली एक्सटेंशन
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085

फ़ोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014

फ़ोन : 079-27541446

सी. डब्ल्यू. सी. कैंपस
धनकल बस स्टॉप के सामने
पनिहटी
कोलकाता 700 114

फ़ोन : 033-25530454

सी. डब्ल्यू. सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781 021

फ़ोन : 0361-2674869

मूल्य

एक प्रति : ₹ 50

वार्षिक : ₹ 200



भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष 38

अंक 4

अप्रैल 2018

इस अंक में

संपादकीय		3
रचनात्मक पाठ्यचर्या	भूपेन्द्र सिंह	5
समझ के साथ विकास	पतंजलि मिश्र	
निर्मितवाद और सीखना	अख्तर बानो	18
एक अनूठा विज्ञान खंड	जागृति रसिकलाल वकील	25
विज्ञान शिक्षण को रचनात्मक बनाने का एक प्रयास		
खेल-खेल में गणित शिक्षण	प्रतीक चौरसिया	30
	सोमू सिंह	
चंडीगढ़ के शहरी गरीब बच्चों द्वारा विद्यालय	गुरु त्रिशा सिंह	47
छोड़ने के कारणों का अध्ययन	सतविंदरपाल कौर	
विद्यालयी शिक्षा द्वारा जीवन कौशलों का विकास	उमेन्द्र सिंह	60
बहुभाषिकता	चित्रा सिंह	65
गांधीजी की भाषा नीति और भाषा चिंतन		
अध्यापक शिक्षा एवं अध्यापकों का निरंतर पेशेवर विकास	उमेश चमोला	81
शिक्षकों में पेशेवर चेतना	जितेन्द्र कुमार लोढ़ा	93
एक महती ज़रूरत		
विद्यालय निरीक्षण, अनुश्रवण एवं अनुसमर्थन	केवलानंद काण्डपाल	104

फार्म 4
(नियम 8 देखिए)
भारतीय आधुनिक शिक्षा

- | | |
|---|---|
| 1. प्रकाशन स्थान | नयी दिल्ली |
| 2. प्रकाशन अवधि | त्रैमासिक |
| 3. मुद्रक का नाम | मनोज शर्मा |
| (क्या भारत का नागरिक है?) | हाँ |
| (यदि विदेशी है तो मूल देश का पता) | लागू नहीं होता |
| पता | जी 40 - 41, सैक्टर - 3,
नोएडा 201 301 |
| 4. प्रकाशक का नाम | एम. सिराज अनवर |
| (क्या भारत का नागरिक है?) | हाँ |
| (यदि विदेशी है तो मूल देश का पता) | लागू नहीं होता |
| पता | राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 |
| 5. अकादमिक मुख्य संपादक का नाम | जितेन्द्र कुमार पाटीदार |
| (क्या भारत का नागरिक है?) | हाँ |
| (यदि विदेशी है तो मूल देश का पता) | लागू नहीं होता |
| पता | राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 |
| 6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो
समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा
समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से
अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों | अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016
(मानव संसाधन विकास मंत्रालय
की स्वायत्त संस्था) |

मैं, एम. सिराज अनवर, अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर लिखे विवरण सत्य हैं।

एम. सिराज अनवर
प्रकाशन प्रभाग

संपादकीय

प्रिय पाठकों! हमारे जीवन में खेलों का बहुत महत्व है। क्योंकि खेलों से हमारे व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास होता है। इसी शृंखला में 04 से 15 अप्रैल, 2018 तक ऑस्ट्रेलिया में आयोजित 21वें कॉमनवेल्थ गेम्स में हमारे देश के प्रतिभाशाली युवा खिलाड़ियों ने विभिन्न खेल स्पर्धाओं में 26 स्वर्ण, 20 रजत एवं 20 कांस्य पदक जीतकर हमें गौरवांजित किया है। वहीं 14 अप्रैल, 2018 को हमने हमारे राष्ट्र के संविधान निर्माता डॉ. बाबा साहब भीमराव अंबेडकर की जयंती मनाई। उन्होंने अपने सामाजिक दर्शन के मंत्रों — स्वतंत्रता, समानता एवं भाईचारे को हमारे सम्मुख भारतीय संविधान के रूप में प्रस्तुत किया। इसी कड़ी में *भारतीय आधुनिक शिक्षा* का यह अंक शिक्षा द्वारा मानवीय मूल्यों का संरक्षण एवं संवर्धन करने वाले विभिन्न मार्गदर्शी विचारों, अनुभवों, मुद्दों तथा शोध परिणामों आदि को लेकर आपके समक्ष आया है।

शिक्षा मानव जीवन का आधार है। इसे रचनात्मक बनाने के लिए रचनात्मक पाठ्यचर्या का होना ज़रूरी है। “रचनात्मक पाठ्यचर्या— समझ के साथ विकास” नामक लेख रचनात्मक पाठ्यचर्या के द्वारा नए ज्ञान को रचने के लिए विद्यार्थी को सक्षम बनाने के सकारात्मक पक्षों को उजागर करता है।

रचनात्मकता लचीली शिक्षा व्यवस्था पर निर्भर है। अतः हमें हमारी व्यूह रचनाओं, शिक्षण विधियों

आदि में परिवर्तन करना होगा। तभी विद्यार्थी अपने पूर्व ज्ञान एवं अनुभवों के आधार पर नवीन ज्ञान का सृजन कर सीख सकेंगे। इन्हीं मार्गदर्शी विचारों एवं अनुभवों को “निर्मितवाद और सीखना” नामक लेख तथा “एक अनूठा विज्ञान खंड— विज्ञान शिक्षण को रचनात्मक बनाने का एक प्रयास” नामक शोध पत्र में समावेशित किया गया है।

विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करने के लिए उनकी पाठ्यचर्या में विभिन्न प्रकार की विषय-वस्तु का समावेश किया जाता है, जिसमें प्रमुख है — गणित विषय। कुछ विद्यार्थियों को इस विषय की विषय-वस्तु जटिल लगती है। उनमें इस जटिलता को दूर कर रुचि उत्पन्न करने के लिए गतिविधि आधारित शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया पर जोर दिया जाता है। “खेल-खेल में गणित शिक्षण” नामक लेख गणित शिक्षण व खेलों में समानता एवं खेलों के माध्यम से ज्ञान और तर्क को विकसित करने के लिए सैद्धांतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

शिक्षा जहाँ मानव का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक रूप से उत्थान करती है, वहीं किसी भी राष्ट्र के निर्माण में भी अहम भूमिका निभाती है। देश के विद्यालयों में प्रारंभिक स्तर पर विद्यार्थी की नामांकन दर में वृद्धि हुई है। लेकिन जैसे-जैसे कक्षा का स्तर बढ़ रहा है, उसी के साथ-साथ उनके द्वारा विद्यालय छोड़ने की वृद्धि दर भी बढ़ रही है। सरकारों

द्वारा अथक प्रयासों से बच्चों को विद्यालय में जाने का अवसर तो मिल रहा है, लेकिन विद्यालयी शिक्षा पूरी करना अभी भी मुश्किल है। यह कहीं-न-कहीं हमारी नीतियों या सामाजिक व्यवस्था में त्रुटियाँ हैं जो इन बच्चों को शिक्षा पूरी करने में बाधा बनती हैं। शोध पत्र, “चंडीगढ़ के शहरी गरीब बच्चों द्वारा विद्यालय छोड़ने के कारणों का अध्ययन” में बच्चों को विद्यालय छोड़ने के लिए मजबूर करने वाले कारणों पर प्रकाश डाला गया है।

“विद्यालयी शिक्षा द्वारा जीवन कौशलों का विकास” नामक लेख में लेखक ने जीवन कौशलों के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख करते हुए शिक्षक द्वारा आयोजित की जाने वाली शैक्षणिक गतिविधियों के माध्यम से विकसित किए जाने वाले जीवन कौशलों पर प्रकाश डाला है।

इन जीवन कौशलों को सीखने की शुरुआत बच्चे की बाल्यावस्था से ही प्रारंभ हो जाती है। जैसे-जैसे वह अपनी भाषा (मातृभाषा) को सीखता है, उससे उसे जीवन कौशलों को और परिष्कृत करने का मौका मिलता है। ऐसे में शिक्षा का उत्तरदायित्व बनता है कि वह बच्चे की भाषा का विकास कर उसे योग्य नागरिक बनाए। भारत एक बहुभाषिक सामाजिक देश है। इसलिए हमेशा यह चिंतन बना रहता है कि हमारी शिक्षा नीति और पाठ्यचर्या में इस तथ्य को किस तरह समाहित किया जाए कि हमारे बहुभाषिक समाज की विभिन्न भाषाओं के मध्य एक सामंजस्य बना रहे। “बहुभाषिकता — गाँधीजी की भाषा नीति और भाषा चिंतन” लेख में हमारी भाषा नीति को गाँधीजी

के भाषा चिंतन के प्रकाश में देखने का प्रयास किया गया है।

हम सभी भली प्रकार जानते हैं कि सीखने की प्रक्रिया से नए ज्ञान का सृजन होता है। जिसमें वैज्ञानिक ज्ञान एवं तकनीकी सबसे आगे है। जिसने वैश्विक गाँव (Global Village) की अवधारणा को जन्म दिया। आज हम वैश्विक मानवीय मूल्यों, जैसे— सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं लोकतांत्रिक मूल्यों पर चिंतन एवं विचार-विमर्श करते हैं। जिसे शिक्षा एवं विशेषकर शिक्षक शिक्षा को अद्यतन कर पूरा किया जा सकता है। इन्हीं सभी मुद्दों एवं अनुभवों तथा प्रयासों को “अध्यापक शिक्षा एवं अध्यापकों का निरंतर पेशेवर विकास”, “शिक्षकों में पेशेवर चेतना—एक महती ज़रूरत” तथा “विद्यालय निरीक्षण, अनुभव एवं अनुसमर्थन” नामक लेखों में विस्तृत रूप से समझाने का प्रयास किया गया है।

आप सभी की प्रतिक्रियाओं की हमें सदैव प्रतीक्षा रहती है। आप हमें लिखें कि यह अंक आपको कैसा लगा। साथ ही, आशा करते हैं कि आप हमें अपने मौलिक तथा प्रभावी लेख, शोध पत्र, आलोचनात्मक समीक्षाएँ, श्रेष्ठ अभ्यास (Best Practices), पुस्तक समीक्षाएँ, नवाचार एवं प्रयोग, क्षेत्र अनुभव (Field Experiences) आदि प्रकाशन हेतु ई-मेल journal.ncert.dte@gmail.com पर या हमारे पते प्रभागाध्यक्ष (पत्रिका, प्रकोष्ठ) प्रकाशन प्रभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली-110016 पर भेजेंगे।

रचनात्मक पाठ्यचर्या समझ के साथ विकास

भूपेन्द्र सिंह*
पतंजलि मिश्र**

आज वैश्विक परिप्रेक्ष्य और सामाजीकरण की प्रक्रिया के केंद्र में विद्यार्थी या सीखने वाले को रखकर शिक्षा के विभिन्न आयाम तय किए जाने की आवश्यकता है। इटली के प्रसिद्ध चित्रकार, अभियंता और वैज्ञानिक लियोनार्डो दा विन्सी का यह मत था कि उन विचारकों के उपदेशों को अनदेखा करना चाहिए, जिनके तर्क, अनुभवों द्वारा सत्यापित न हों (एडलर-पेंड्रिस और एन्थोनी, 2017)। अनुभवजनित ज्ञान, तर्क करने की गुणवत्ता में तो वृद्धि करता ही है, साथ ही समझ के साथ विकास में भी योगदान देता है। ब्रूनर (1960) ने अपने एक महत्वपूर्ण लेख 'द प्रोसेस ऑफ़ एजुकेशन' में रचनात्मकता के बारे में लिखा है कि विद्यार्थी, अतीत और वर्तमान की जानकारी के आधार पर अपने ज्ञान का स्वयं निर्माण करता है। इसीलिए पाठ्यचर्या का निर्माण ऐसी दुनिया को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए जहाँ सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिस्थितियाँ लगातार आस-पास के परिवेश, विद्यालयों और विद्यार्थियों के लक्ष्यों में परिवर्तन करती रहती हैं (ब्रूनर, 1977)। यह लेख भी रचनात्मक पाठ्यचर्या के द्वारा नए ज्ञान को रचने के लिए विद्यार्थी को सक्षम बनाने के सकारात्मक पक्षों को उजागर करता है।

रचनात्मकतावाद (Constructivism), व्यक्ति कैसे सीखता है? के बारे में एक ऐसा सिद्धांत और दर्शन है (बिरने और वेल्सर, 2012) जो इस मत पर आधारित है कि ज्ञान ऐसी वस्तु नहीं है जो की एक शिक्षक के द्वारा साधारणतः कक्षा-कक्ष में प्रदान की जा सके। प्रसिद्ध शिक्षक और दार्शनिक, सुकरात का कथन है कि मैं किसी को कुछ भी नहीं सिखा सकता, मैं केवल उन्हें विचार दे सकता हूँ (प्रोज, 2009)। यह इस बात की पुष्टि करता है कि रचनात्मक अधिगम

के दौरान विद्यार्थी या सीखने वाला नए ज्ञान को अपने पहले से सीखे हुए ज्ञान के साथ जोड़कर सीखता है। रचनात्मकता के पक्ष में यह पंक्ति, 'घोड़े को पानी के पास तो ले जाया जा सकता है, लेकिन उसे पानी पीने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता', गोव्मोन के इस तर्क से कि 'आप किसी को ज़बरदस्ती नहीं सिखा सकते और न ही सीखने को मजबूर कर सकते हैं, आप केवल सीखने का माहौल तैयार करके दे सकते हैं (माइल्स और बुनोर, 2017)' से

*शोधार्थी, शिक्षा विद्यापीठ, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान – 324010

**सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान – 324010

पूरी तरह संतुष्ट होती दिखाई देती है। रचनात्मकता, समझ के साथ अंतर्दृष्टि जाग्रत करने के लिए स्वयं की आंतरिक शक्तियों से पहचान कराने का विशिष्ट माध्यम है। इक्कीसवीं सदी के मशहूर वाद्ययंत्र वादक एवं संगीतकार पाब्लो केसलस कहते हैं कि एक बच्चे को पता होना चाहिए कि वह स्वयं एक चमत्कार है, क्योंकि दुनिया के आरंभ से अंत तक उसके जैसा कोई दूसरा बच्चा नहीं होगा (*इंस्पाइरिंग कोट्स ऑन चाइल्ड लर्निंग एंड डिवेलपमेंट*, 2007)। व्यक्तिगत विभिन्नताएँ (Individual differences) हमेशा से विद्यमान रही हैं। प्लेटो (2000) ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ *द रिपब्लिक* में लिखा कि कोई भी दो व्यक्ति पूरी तरह समान जन्म नहीं लेते, प्राकृतिक निधियों (Natural endowments) से प्रत्येक व्यक्ति भिन्न होता है। अतः प्रत्येक के सीखने का तरीका और सीखने की गति भी भिन्न एवं अद्वितीय होती है। तो प्रश्न यह उठता है कि सिखाने के लिए अथवा ज्ञान का आदान-प्रदान करने के लिए अध्यापन की योजना अथवा पाठ्यचर्या कैसी होनी चाहिए?

रचनात्मकतावाद के अनुसार, (1) विद्यार्थी अर्थ का निर्माण करने वाला और ज्ञान का सृजक है; (2) एक सक्रिय एवं मानसिक विकास की प्रक्रिया के तहत विद्यार्थी द्वारा ज्ञान की रचना की जाती है; और (3) नए-नए अनुभवों के द्वारा प्राप्त ज्ञान स्थायी होता है और इसी पूर्व ज्ञान के कारण सूझ अथवा अंतर्दृष्टि उत्पन्न होती है। ऐसे में विद्यार्थियों की समझ को समेकित कर, रचनात्मक रूप से उनकी समझ की सीमाएँ बढ़ाते हुए इस बात के प्रति सचेत भी करना होगा कि मतभेद या अंतर किस प्रकार व्यक्त किए जा

सकते हैं (*राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005*)। इसके लिए—

- विद्यार्थियों को स्वतंत्र विचारक होना चाहिए;
- सीखने वाले से यह उम्मीद की जाती है कि वह जानने के साथ-साथ समझे;
- विद्यार्थी समझ के साथ प्रश्न पूछे;
- विद्यार्थी सक्रिय सदस्य के रूप में दल (Team) के साथ कार्य करे; और
- विद्यार्थी व्यवहार में स्पष्टता के साथ परिवर्तन करो।

रचनात्मकतावादी पाठ्यचर्या—आवश्यकताएँ

जब तक लोग एक-दूसरे से प्रश्न पूछ रहे थे, हमारे पास रचनात्मक कक्षाएँ थीं। रचनात्मकता सीखने का अध्ययन इस बारे में है कि हम समस्त परिवेश, वातावरण और उसके अर्थ को ऐसे समझते हैं कि जैसा वह वास्तव में है (हन्टर, पीयरसन और गुडरेंज, 2015)। अतः अनुभव, तथ्यों की विश्वसनीयता के साक्ष्य के रूप में होना चाहिए। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005* का सुझाव है कि परस्पर विश्वास का वातावरण कक्षा को बच्चों के लिए एक ऐसा सुरक्षित स्थान बना देगा, जहाँ वे अनुभव बाँट सकें, जहाँ विवादों को स्वीकार कर उन पर रचनात्मक प्रश्न उठाए जा सकें और जहाँ विवादों के हल परस्पर सहमति से निकाले जा सकें, चाहे ये हल कितने ही अस्थायी क्यों न हों। विशेषकर लड़कियों व वंचित सामाजिक वर्ग से आए बच्चों के लिए कक्षा व विद्यालय ऐसे स्थान पर होने चाहिए जहाँ वे निर्णय लेने की प्रक्रिया पर चर्चा कर सकें, अपने निर्णय के आधार पर प्रश्न उठा सकें तथा सोच-समझ कर विकल्प चुन सकें (*राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005*)।

रिचर्ड ई. मौरैर (1996) ने अपनी पुस्तक *डिजाइनिंग ऑल्टरनेटिव असेसमेंट्स फ़ॉर इंटरडिसिप्लिनरी करिकुलम इन मिडिल एंड सेकंडरी स्कूल्स* में रचनात्मकतावादी पाठ्यचर्या निर्माण के लिए चार प्रमुख आवश्यकताओं पर ध्यान केंद्रित किया है —

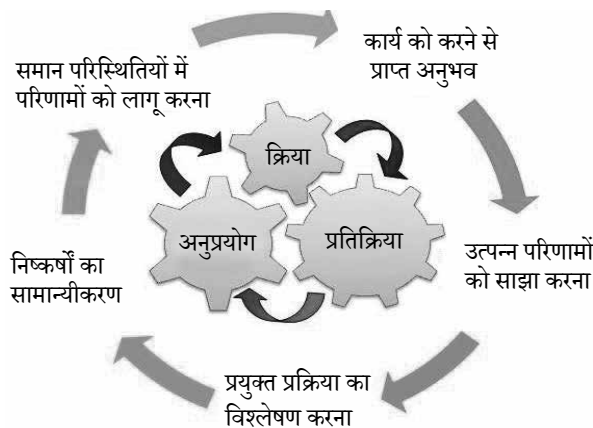
- कौशलों के माध्यम से अर्थ निर्माण करने पर जोर देना;
- बालक के ज्ञान प्राप्त करने की गहनता को ध्यान में रखना;
- बालक की समझ के अनुरूप पाठ्यचर्या निर्माण करना और उस पाठ्यचर्या का संबंध कक्षा से बाहर की दुनिया से जोड़ना; तथा
- वास्तविक वार्तालाप और चर्चा को शामिल करते हुए पाठ्यचर्या का निर्माण करना।

विभिन्न परिस्थितियों में की गई विभिन्न प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप किसी कार्य को स्वयं करने या कार्य करने में सहायता से प्राप्त अनुभव, उस अनुभव के परिणामों को साझा करने, कार्य करने में प्रयुक्त प्रक्रिया का विश्लेषण करने, प्राप्त

निष्कर्षों का सामान्यीकरण कर अन्य परिस्थितियों में लागू करने से प्राप्त होने वाला अनुभव ही स्थायी अधिगम होता है। अतः प्रत्येक क्रिया के लिए की गई प्रतिक्रिया और बार-बार अनुप्रयोग, अनवरत चलने वाली प्रक्रिया के ऐसे महत्वपूर्ण कलपुर्जे हैं जो नए ज्ञान की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी हैं।

नए ज्ञान का अधिगम

डेवन (2015) के अनुसार, जटिल विचारों को सरलता से समझने के लिए संप्रत्यय चित्र (Concept map) अधिक उपयोगी हैं। इसीलिए सीखने वाले के संज्ञानात्मक बोझ (Cognitive load) को कम करने के साथ ही नए ज्ञान का अधिगम करने के लिए मज़बूत उपकरणों यथा निर्देशित खोज प्रश्नों (Guided discovery questions), सहकर्मी विवरण (Peer explanation), जिग्सा तकनीक (Jigsaw technique — कक्षा-कक्ष की गतिविधियों की ऐसी तकनीक जिसमें दी गई समस्या बिना सहयोग के पूर्ण नहीं की जा सकती),



चित्र 1 — आनुभविक अधिगम प्रक्रिया

विचार-मंथन (Brain storming) और विचार उत्तेजक कार्यों (Thought provoking tasks) की सहायता ली जाए। सबसे सही तरीका तो यह होगा कि ज्ञान के पुष्टिकरण (Cofirmation) व औचित्य (Rationale) को स्थापित करने की प्रक्रिया में जिन अवधारणाओं व अर्थों का उपयोग किया जाता है, उनके आधार पर भी ज्ञान का वर्गीकरण किया जाए (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005)। कोर्ब (2009) ने नए प्रकार का ज्ञान सीखने अथवा नए अनुभवों को सीखने के तीन तरीके सुझाए हैं —

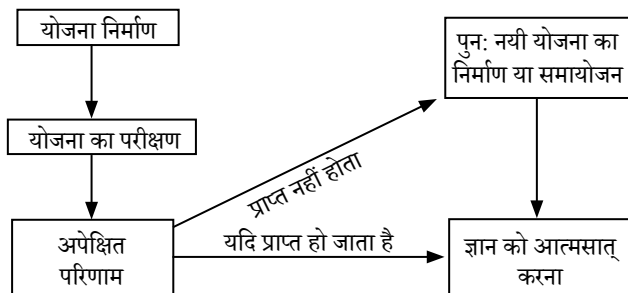
- पूर्व की योजना में परिवर्तन किए बिना नए ज्ञान या अनुभव को सीखना;
- योजना में परिवर्तन करके नए ज्ञान या अनुभव को सीखना; तथा
- हर बार नए ज्ञान या अनुभव को सीखने के लिए नयी योजना का निर्माण करना।

नए ज्ञान के अधिगम और पूर्व ज्ञान के उपयोग के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005 में काम के संदर्भ में आरंभिक स्तर से शुरू करते हुए काम को अधिगम से जोड़ने के लिए कुछ बुनियादी कदम सुझाए गए हैं। उनके पीछे आधार यह है कि

ज्ञान काम को अनुभव में रूपांतरित कर देता है और सहयोग, सृजनात्मकता और आत्मनिर्भरता जैसे मूल्यों की उत्पत्ति करता है। यह ज्ञान और रचनात्मकता के नए रूपों की प्रेरणा भी देता है।

रचनात्मकतावादी पाठ्यचर्या के प्रमुख तत्व
रचनात्मकतावादी पाठ्यचर्या निर्माण के लिए गैमों और कोल्ले (2001) ने रचनात्मकतावादी अधिगम प्राकल्प (Constructivist learning design) के लिए छह तत्वों को प्रमुखता दी है —

1. **स्थिति फ्रेम** — यह सीखने के प्रकरणों (Learning episodes) के लक्ष्य, कार्य और प्रकार को निर्धारित करता है।
2. **वर्ग विभाजन** — इसमें सामाजिक संरचनाएँ और समूह अंतर्क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं जो सीखने वाले या विद्यार्थी के शामिल होने (Involvement) को निर्धारित करती हैं।
3. **संयोजक** — यह रचनावादी पाठ्यचर्या का हृदय होता है तथा यह पूर्व ज्ञान को नवीन ज्ञान से जोड़ने का माध्यम होता है।
4. **प्रश्न** — ये विद्यार्थियों के विचारों को उत्साहित करने, प्रेरित करने, संगठित करने और साझा करने के माध्यम होते हैं।



चित्र 2 — रचनात्मक अधिगम की प्रक्रिया

5. **प्रदर्शन** — यह विद्यार्थी के सीखे हुए ज्ञान के अनुसार उसके शिक्षकों, साथी समूह और अन्य हितधारकों के प्रति सामाजिक परिस्थितियों में की गई प्रतिक्रिया का सार्वजनिक रूप से प्रदर्शन करने की अनुमति प्रदान करता है।
6. **प्रतिक्रियाएँ** — ये विद्यार्थी और शिक्षक को उनके व्यक्तिगत एवं सामूहिक (Collective) अधिगम के अवसरों को विश्लेषणात्मक रूप से सोचने के अवसर प्रदान करती हैं।

रचनात्मकतावादी पाठ्यचर्या के उपागम

शिक्षण एक सहयोगी उपक्रम (Collaborative undertaking) है और सहकारिता अथवा भागीदारी उसका माध्यम या साधन (Means) है। अतः रचनात्मकतावादी शिक्षण की योजना बनाने अथवा रचनात्मकतावादी पाठ्यचर्या निर्माण करने के लिए कुछ प्रमुख उपागम, पाठ्यचर्या की प्रभावशीलता के लिए आवश्यक हैं। रचनात्मकतावादी पाठ्यचर्या के निर्माण के लिए निम्न उपागम आधार के रूप में कार्य करते हैं —

बाल-केंद्रित उपागम (Child centered approach)

वाइगोत्सकी का मत है कि प्रथमतः, सीखने के लिए क्रियात्मक रूप से जुड़ने (Engage) की आवश्यकता होती है, दूसरा, अधिगम तब होता है, जब बालक अंतर्क्रिया करता है तथा अपने चारों ओर खोजबीन करने के लिए प्रेरित होता है और तीसरा, साथ-साथ किए गए सामाजिक अंतर्क्रिया और अन्वेषण बालक के ज्ञान के स्थायीकरण (Fixation) के लिए जिम्मेदार हैं (लिन, 2015)।

इसका स्पष्टीकरण पियाजे के इस मत में छिपा है कि बच्चे संप्रत्ययों और विचारों को संगठित करने और उन्हें एक रूपरेखा (Schema) में संजोकर सीखते हैं। बच्चे, उस ज्ञान के नियंत्रण में बने रहते हैं जो ज्ञान उन्हें दिया जा रहा है और उसी के सहारे वे सामाजिक क्रियाकलापों और अन्वेषण के आधार पर नए ज्ञान की रचना करते हैं (बयानी, 2017)। अतः बालक को पूर्व ज्ञान के आधार पर नवीन विचारों की उत्पत्ति करने के योग्य बनाने हेतु रचनावादी पाठ्यचर्या निर्माण के लिए, इसमें बाल-केंद्रित उपागम के महत्व को समझते हुए, शामिल किए जाने की आवश्यकता है।

विषय-केंद्रित उपागम

विषय-केंद्रित उपागम को ज्ञान आधारित उपागम (Knowledge based approach) भी कहा जाता है। विषय-वस्तु को तीन अलग-अलग प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है—

1. **सामान्य विषय-वस्तु (Common content)**— वह विषय-वस्तु जो कि सभी विद्यार्थियों को पढ़नी चाहिए, जैसे— (i) प्राथमिक विद्यालयों में यह पढ़ना, लिखना और गणना करना (अंकगणित) (Reading, Writing and Arithmetic अर्थात् 3Rs) होते हैं, (ii) माध्यमिक विद्यालयों में गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान/इतिहास और अंग्रेजी/भाषा कला आदि।
2. **विशेष विषय-वस्तु (Specific content)** — वह विषय-वस्तु जिससे विशिष्ट व्यवसायों के लिए विद्यार्थियों को तैयार करते हैं। इसमें व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा संबंधी पाठ्यचर्या शामिल होती है।

3. **ऐच्छिक विषय-वस्तु (Elective content)** — यह वैकल्पिक चयन की विषय-वस्तु होती है। इनके माध्यम से बच्चे अपने-अपने ज्ञान और कौशल में विशेषज्ञता प्राप्त करने की कोशिश कर सकते हैं, जैसे— फ़ोटोग्राफी या वैमानिकी (Aeronautics) आदि।

समस्या-केंद्रित उपागम

समस्या आधारित अधिगम ऐसी शिक्षण पद्धति है जिसमें जटिल वास्तविक दुनिया की समस्याओं का प्रयोग विद्यार्थियों को अवधारणाओं और सिद्धांतों का ज्ञान कराने के लिए किया जाता है। यह विद्यार्थी में समालोचनात्मक चिंतन कौशल, समस्या समाधान संबंधी योग्यता और संप्रेषण कौशल के विकास को बढ़ावा दे सकता है। यह समूह में कार्य करने, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष मूल्यांकन और जीवन भर सीखने के लिए अवसर प्रदान कर सकता है (डच और अन्य, 2001)। वाइगोत्सकी (1978) के अनुसार विद्यार्थी के समस्या समाधान संबंधी कौशलों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है —

- ऐसे कौशल जिन्हें विद्यार्थी कार्यान्वित नहीं कर सकता, जैसे— प्रत्येक विद्यार्थी अपने साथियों का हर प्रकार से मूल्यांकन करने में सक्षम तो होता है, लेकिन उसका मूल्यांकन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता (एक शिक्षक द्वारा किया गया मूल्यांकन ही प्रामाणिक माना जाता है)
- ऐसे कौशल जिन्हें विद्यार्थी कार्यान्वित करने के लिए योग्य हो सकता है, जैसे— नेतृत्व, निर्णय निर्माण।
- ऐसे कौशल जिनका कार्यान्वयन विद्यार्थी सहायता मिलने पर कर सकता है, जैसे—

संगणक का संचालन, सूचना संप्रेषण तकनीकी का उपयोग आदि।

मानव संबंध-केंद्रित उपागम

मानव संबंध-केंद्रित उपागम शिक्षा के निम्न संदर्भों के बारे में ज्ञान प्राप्त करने को सम्मिलित करता है—

1. **शिक्षा के उद्देश्य**— शैक्षिक क्रियाओं के तीन प्रकार के सामान्य उद्देश्य हैं —
(i) सामाजिक उद्देश्य; (ii) अकादमिक उद्देश्य; (iii) व्यक्तिगत उद्देश्य।
2. **शैक्षिक प्रक्रियाओं का चरित्र** — प्रत्येक व्यक्ति के शिक्षा प्राप्त करने के पीछे निहित उद्देश्यों के आधार पर शैक्षिक प्रक्रियाओं का चरित्र निर्धारित होता है।
3. **सीखने की प्रकृति** — सीखने की प्रकृति मानव-केंद्रित शिक्षण प्रक्रिया के अनुसार निर्धारित होनी चाहिए।
4. **विद्यार्थी की व्यक्तिगत एवं शैक्षिक ज़रूरतें**— मैस्लो के अनुसार व्यक्ति की निम्न पाँच आवश्यकताएँ प्रमुख हैं —
(i) शारीरिक आवश्यकताएँ;
(ii) सुरक्षा संबंधी आवश्यकताएँ;
(iii) प्रेम/स्नेह और संबद्धता संबंधी आवश्यकताएँ;
(iv) आत्मसम्मान संबंधी आवश्यकताएँ; और
(v) आत्म-ज्ञान संबंधी आवश्यकताएँ।

रचनात्मकतावादी पाठ्यचर्या के निहितार्थ

भारत में शिक्षा के जटिल परिदृश्य को देखें तो तीन मुख्य मुद्दे नज़र आते हैं— (i) शिक्षा आज भी हमारे संविधान में निहित समता के उद्देश्य की प्राप्ति से बहुत दूर है; (ii) भारत में अच्छी-से-अच्छी शिक्षा भी

दक्षता तो विकसित करती है, लेकिन रचनात्मकता व अन्वेषण को प्रेरित नहीं करती; और (iii) भारत में शिक्षा की अधिकतर मूलभूत समस्याओं का आधार है, परीक्षा की बोझिल व्यवस्था (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005)। इसीलिए मौजूदा शिक्षा की स्थिति में किसी भी तरह के गुणात्मक परिवर्तन के लिए एक निदर्शनात्मक बदलाव, रटने को हतोत्साहित करने, भाषा, भाषा के प्राकल्प व संख्यात्मक दक्षता द्वारा खोजबीन की प्रवृत्ति को सुदृढ़ करने एवं विद्यालयों द्वारा पाठ्य-सहगामी क्रियाओं पर आविष्कारशीलता एवं रचनात्मकता के माध्यम से अधिक बल दिए जाने की ज़रूरत है, भले ही ये तत्व बाहर की परीक्षा व्यवस्था का भाग न हों, (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005) लेकिन निश्चित ही पाठ्यचर्या योजना के निहितार्थ को तय करने वाले आवश्यक अंग हैं। जोनासेन (1994) ने रचनात्मकतावादी पाठ्यचर्या के निम्न निहितार्थ सुझाए हैं—

- वास्तविक ज्ञान को प्रतिनिधित्व प्रदान करता है।
- वास्तविक दुनिया और वास्तविक परिवेश की प्राकृतिक जटिलता का प्रतिनिधित्व करता है।
- वास्तविक ज्ञान के निर्माण पर केंद्रित करता है न कि आभासी ज्ञान के निर्माण पर।
- अमूर्त शिक्षण के बजाय, कार्य-योजनाओं के संदर्भ के आधार पर प्रामाणिक प्रस्तुतीकरण देता है।
- पूर्व निर्धारित अनुदेश अनुक्रम (Instructional sequences) के बजाय, कार्य करने के लिए वास्तविक परिवेश (Real world) एवं प्रकरण आधारित अधिगम वातावरण (Case based learning environment) प्रदान करता है।

- चिंतनशील अभ्यास (Reflective practice) को प्रोत्साहन देता है।
- संदर्भ और विषय-वस्तु पर आधारित ज्ञान के निर्माण में सक्षम बनाने में सहायक है।
- सामाजिक समझौते के माध्यम से सहयोग के द्वारा ज्ञान के निर्माण का समर्थन करता है।

रचनात्मकतावादी पाठ्यचर्या के अनुप्रयोग

विद्यार्थी अपने प्रारंभिक संप्रत्ययों को स्व-चिंतन (Self-reflection) और अंतर्क्रिय (Interaction) के द्वारा पुनर्परिभाषित (Redefine), पुनर्गठित (Reorganise), विस्तृत (Elaborate) और परिवर्तित (Change) करते हैं (बाईबी, 1997)। अगर आवश्यकताओं की पूर्ति अथवा अर्थोपार्जन (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005) के कार्य को विद्यालयी पाठ्यचर्या का अभिन्न हिस्सा बना दिया जाए तो कई लाभ अर्जित किए जा सकते हैं। अकादमिक वातावरण में नयी प्रकार की सूझ से रचनात्मकता और कार्य की प्रकृति के ही बदल जाने की संभावना होती है (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005)। रचनात्मकतावादी पाठ्यचर्या के अनुप्रयोग को 'पाँच ई (5E) संप्रत्यय' के माध्यम से समझा जा सकता है।

1. **संलग्नता (Engage)**— अतीत और वर्तमान के अनुभवों के तालमेल बिठाने को संलग्नता के अंतर्गत रखा जाता है। इसमें गतिविधियों का खाका बनाकर विद्यार्थियों के विचारों पर मौजूदा गतिविधियों के संदर्भ में ध्यान केंद्रित किया जाता है और विद्यार्थियों को सीखने वाले कौशल, प्रक्रिया और अवधारणाओं के साथ

मानसिक रूप से संलग्न करने के प्रयास किए जाते हैं। प्रत्येक पाठ्य-योजना में एक अनिवार्य प्रश्न होता है जो उनकी जाँच का आधार होता है। आमतौर पर संलग्नता (Engage) में कुछ प्रमुख प्रश्न होते हैं जिससे अन्वेषण को दिशा मिल सके।

2. खोजना (Explore) — इसमें विद्यार्थी विषय का गहन अन्वेषण/खोज करते हैं। सबसे ज़्यादा ज़रूरी यह है कि बच्चों को अपने तरीके से चीज़ों को समझने के अवसर मिलते हैं और केवल उन्हें दिशा-निर्देश देने की ज़रूरत होती है। अध्यापक ज़रूरी सवाल पूछकर, उनके संवाद को सुनकर यह सुनिश्चित करता है कि बच्चों में कुछ नया खोज करने की वृत्ति विकसित हो रही है।

3. व्याख्या (Explain) — इसमें विद्यार्थियों को उन अवधारणाओं की व्याख्या करने में मदद मिलती है, जिन्हें वे सीख रहे होते हैं या सीखना चाहते हैं। बच्चे अपनी समझ को शब्दों में रूपांतरित या व्यक्त करते हैं और अपने कौशल का परिचय देते हैं तो उन्हें औपचारिक शब्दावली, परिभाषा, अवधारणा, प्रक्रिया, कौशल और विभिन्न व्यवहारों से परिचित होने के अवसर मिलते हैं।

4. विस्तार (Elaborate) — विस्तार की प्रक्रिया में बच्चों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने अभ्यास पर लगातार ध्यान केंद्रित करें और नवीन सूचनाओं का उपयोग एवं विश्लेषण कर अपने निष्कर्षों की प्रस्तुति अन्य लोगों

(अपने शिक्षक, साथी-समूह, निर्देशक आदि) के समक्ष करें। अपने कार्य के मूल्यांकन, प्रस्तुतीकरण एवं सुधार करते हुए नयी विधियों की तरफ़ अग्रसर होने के लिए यह सबसे सही चरण होता है।

5. मूल्यांकन (Evaluate) — विस्तार की प्रक्रिया में प्रस्तुतीकरण के दौरान विद्यार्थी के शिक्षक, साथी-समूह, निर्देशक आदि द्वारा किया गया मूल्यांकन, उसे अपने कार्य को जाँचने का अवसर प्रदान करता है। अतः विद्यार्थी को मूल्यांकन के दौरान विभिन्न पुनर्बलन, पुरस्कार अथवा फ़ीडबैक आदि के द्वारा खोज करने के लिए प्रेरित किया जाए ताकि वे अपने मूल्यांकन के तरीके एवं उपकरण स्वयं विकसित कर सकें।

रचनात्मक पाठ्यचर्या निर्माण में समस्याएँ

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा— 2005 में पाठ्यचर्या को रचनात्मक बनाने से जुड़ी पाँच प्रमुख समस्याओं को रेखांकित किया गया है —

- ज्ञान के जो स्वरूप पाठ्यपुस्तकों के अंतर्गत नहीं आते या जिनका मूल्यांकन अंकों के आधार पर नहीं हो सकता, उनको एक तरफ़ करके 'अतिरिक्त' करार दे दिया जाता है, जबकि उन्हें पाठ्यचर्या का समेकित अंग होना चाहिए। इनको जैसे-तैसे निपटा दिया जाता है और बिरले ही शिक्षक इन विषयों के लिए स्कूल में तैयारी करते या ध्यान देते हैं। ज्ञान के अन्य रूप, जैसे — शिल्प और खेलकूद, जो कौशल, सौंदर्यबोध, चतुराई, रचनात्मकता, समूह में काम करने की क्षमता

आदि की दृष्टि से बेहद समृद्ध होते हैं, परे छूट जाते हैं। कामकाज-संबंधी ज्ञान के महत्वपूर्ण क्षेत्र, उससे जुड़े व्यावहारिक कौशल भी पूरी तरह से उपेक्षित रह जाते हैं और अभी भी ऐसे उपयुक्त पाठ्यचर्या सिद्धांत नहीं निर्मित किए गए हैं जो इन क्षेत्रों में बच्चे के ज्ञान, कौशल और रुचि के विकास को प्रोत्साहित कर पाएँ।

- विषयों का आपस में कोई तालमेल नहीं होने से बच्चा ज्ञान को समेकित प्राप्त करने के बजाए खंडों में प्राप्त करता है। इससे बालक, ज्ञान ग्रहण करने के बाद विकसित हुए विभिन्न दृष्टिकोणों को कोई एक निश्चित आधार न मिल पाने के कारण, विषयगत सूचना को ही ज्ञान समझ लेता है। इस कारण से वह विद्यालयी ज्ञान को अपने स्वयं के अनुभवों से जोड़ नहीं पाता और बालक के विषयगत ज्ञान और अपने परिवेश के ज्ञान के बीच एक सीमा-रेखा खिंच जाती है।
- पहले से मौजूद ज्ञान को ज्यादा तवज्जो दी जाती है जिससे बच्चे की स्वयं के द्वारा ज्ञान सृजित करने एवं कुछ भी नया खोजने की क्षमता नष्ट हो जाती है और सूचना को ही ज्ञान से ज्यादा महत्व देकर भारी-भरकम पाठ्यपुस्तकों का निर्माण कर दिया जाता है। इसमें यांत्रिक रूप से दोहराने और प्रश्नों के पहले से तय किए हुए उत्तर आने पर जोर दिया जाता है, न कि रचनात्मकता के साथ समझ बढ़ाने पर। ऐसे में केवल 'तथ्यों के बोझ' के अतिरिक्त बच्चा कुछ और अधिक हासिल नहीं कर पाता।
- आज एक महत्वपूर्ण आवश्यकता यह है कि विषय का अधिगम और विद्यालय की गतिविधियाँ, समाज के समकालीन मुद्दों को संबोधित करें। लेकिन होता इसके बिलकुल विपरीत है और वह यह कि विद्यालयी पाठ्यचर्या समाज के मुद्दों को तो शामिल करती है, परंतु एक तो उन मुद्दों को सालों-साल बदला नहीं जाता है, जिससे सिखाने और सीखे हुए का मूल्यांकन करने हेतु परंपरागत विधियाँ ही जस की तस बनी रहती हैं और तत्कालीन मुद्दे पाठ्यचर्या में शामिल होते-होते फिर पुराने हो जाते हैं। इस स्थिति में बालक का ज्ञान वहीं का वहीं रहता है, वह यह जान ही नहीं पाता की नवाचार क्या है?
- एक समस्या ज्ञान की सामग्री और ज्ञान प्रदान करने के सिद्धांतों के चयन से संबंधित है। विकास के आयामों को ध्यान में रखकर यह तो तय कर लिया जाता है कि ज्ञान प्रदान करने की सामग्री कक्षा-स्तर अनुरूप, तार्किक क्रम में, बालक की सीखने की गति और बालक के परिवेश से संबंधित है कि नहीं। परंतु इन सबमें तालमेल कैसे बिठाया जाए, यह तय नहीं किया जाता। उदाहरणार्थ—माध्यमिक विद्यालय में गणित एवं भौतिकी की अवधारणाएँ, उन्हें एक-दूसरे से नहीं जोड़ा जाता (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा— 2005)। इससे बालक के स्वयं के अनुभवों को आजमाने का उचित धरातल न मिल पाने के कारण पाठ्यचर्या को रचनात्मक बनाने के समस्त प्रयास विफल हो जाते हैं।

भाषा, साहित्य और रचनात्मक पाठ्यचर्या

बहुभाषिकता, जो बच्चे की अस्मिता (Sense of power) का निर्माण करती है और जो भारत के भाषा-परिदृश्य का विशिष्ट लक्षण भी है, उसका संसाधन के रूप में उपयोग, कक्षा की कार्यनीति का हिस्सा बनाने तथा उसे लक्ष्य के रूप में रखने का कार्य रचनात्मक भाषा शिक्षक का है। चूँकि बच्चों की अधिकाधिक प्रवृत्ति चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति करने की होती है। यहाँ तक कि भिन्न प्रतिभा वाले बच्चे, जो बोल नहीं पाते, वे भी अपनी अभिव्यक्ति के लिए उतने ही जटिल वैकल्पिक संकेतों और प्रतीकों का विकास कर लेते हैं (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005)। यह बच्चों के स्वयं के द्वारा उपलब्ध संसाधन का बेहतर इस्तेमाल तो है ही, साथ-ही-साथ अपने अस्तित्व को संरक्षित करने की भूमिका का भी निर्वहन है। पुस्तकों से सीखने एवं सिखाने के बजाय करके सीखना एवं सिखाना संवेगों, संवेदनाओं, अभिवृत्तियों आदि को अधिक प्रभावित करता है। वैसे जॉन डीवी ने भी यही कहा कि “समस्त वास्तविक ज्ञान, अनुभव के माध्यम से आता है” (डीवी, 1938)।

रुचिकर साहित्य भी बच्चों की रचनाशीलता को बढ़ा सकता है। कोई कहानी, कविता या गीत सुनकर बच्चे भी स्वयं कुछ लिखने की दिशा में प्रवृत्त हो सकते हैं। उनको इसके लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वे अलग-अलग रचनात्मक अभिव्यक्ति के माध्यमों को आपस में मिलाएँ (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005)।

साहित्य को रुचिकर बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रभावी दृश्य-शिक्षण उपकरण (Visual teaching tools) हो सकते हैं, जिनमें फ़ोटो, चित्र, चिह्न, प्रतीक, स्केचेज़, लेखा चित्रित आँकड़े और अवधारणा, नक्शे आदि हो सकते हैं। उदाहरण के तौर पर, हम अधिकतर ब्रांड के नाम को पढ़ने से पहले, उसके चित्रित आलेख (Visual graphic) अथवा लोगो (Logo) को देखकर ब्रांड को तुरंत पहचान लेते हैं (कौयौमदजियान, 2012)।

व्यक्तिगत कौशल विकास और रचनात्मक पाठ्यचर्या

व्यक्तिगत और सामाजिक अपेक्षाओं के मद्देनज़र अध्ययन में आए बड़े बदलावों के बावजूद पाठ्यचर्या निर्माण के लिए प्रासंगिक प्रमुख क्षेत्र बहुत लंबे समय तक स्थिर ही रहे हैं। यह आवश्यक है कि बदलते परिप्रेक्ष्य और वैश्विक माँग को ध्यान में रखकर पाठ्यचर्या निर्माण के लिए उसके प्रत्येक क्षेत्र पर गहन पुनर्विचार किया जाए ताकि उभरती सामाजिक ज़रूरतों को पूरा किया जा सके। इस संबंध में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005 में कलाओं, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा की भूमिका व स्थिति पर विशेष ध्यान देने, कलाओं को पाठ्यचर्या के क्षेत्र में लाकर समाहित करने हेतु अनुशंसा की गई है। इस रूपरेखा में आर्थिक, सामाजिक व व्यक्तिगत विकास के लिए काम, शांति और स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा की आवश्यकता को बताते हुए, इनके माध्यम से बुनियादी आत्मनिर्भरता, शांति-आधारित मूल्यों

व स्वास्थ्य की संस्कृति में बच्चों के सामाजीकरण की प्रक्रिया को उज्ज्वल बनाने पर जोर दिया गया है। उदाहरण के लिए, यह दिखाई देना बिल्कुल भी असामान्य नहीं है कि छोटे-छोटे बच्चे फ़र्श बुहारने, बैठकें करने, घर बनाने (मिट्टी या बजरी में खेलते हुए, दीवारों पर कोयले या चूना पत्थर से), खाना बनाने या घर-घर खेलने आदि का अभिनय करें। ऐसा करने से उनके स्वयं के अनुभवों में सामाजिकता, सहयोग, व्यवस्था, संगठन, समूह, तंत्र निर्माण, निर्णय करने एवं निर्णय परिमार्जन, नेतृत्व आदि का विकास स्वतः होने लगता है। कई शिक्षाशास्त्रीय विधियों में काम का उपयोग शैक्षणिक उपकरण के रूप में किया जाता है। उदाहरण के लिए, मांटेसरी पद्धति में काम के कौशल और अवधारणाओं को काफ़ी आरंभ से पाठ्यचर्या में जगह दी जाती है। सब्जी काटना, कक्षा साफ़ करना, बागबानी और कपड़े साफ़ करना आदि शिक्षण-चक्र का हिस्सा होते हैं। बच्चों की आयु व योग्यता को ध्यान में रखकर तैयार किया गया उपयोगी काम उनके सामान्य विकास में तो योगदान देता ही है, साथ ही उनके लिए मूल्यों, बुनियादी वैज्ञानिक अवधारणाओं, कौशलों और रचनात्मक अभिव्यक्ति के कारक के रूप में काम करता है। बच्चे काम के द्वारा अपनी एक अस्मिता पाते हैं और स्वयं को उपयोगी और महत्वपूर्ण समझते हैं, क्योंकि काम उनको अर्थवान बनाता है और इसके माध्यम से वे समाज का हिस्सा बनते हैं और ज्ञान के निर्माण में सक्षम हो पाते हैं (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005)।

निष्कर्ष

रचनात्मक पाठ्यचर्या की विषय-वस्तु इस बात पर जोर देती है कि कैसे एक बालक अपने पूर्व के अनुभवों में नए अनुभवों को जोड़ता है। उसके बाद उन अनुभवों के आधार पर पहले से स्थापित मतों, विश्वासों, प्राकल्पनाओं, सिद्धांतों का सुधार, पुष्ट और अस्वीकृत करता है (बिरने और वेल्सर, 2012) और अपने सामान्य बोध में वृद्धि करता है। आत्मसातीकरण (Assimilation) की प्रक्रिया के पक्ष में जीन पियाज़े कहते हैं कि सीखना तो जन्म के पहले से ही प्रारंभ हो जाता है। पियाज़े के अनुसार, यदि माता के उदर (Abdomen) के पास जोर से ध्वनि उत्पन्न की जाए तो भ्रूण की हृदय की धड़कन बढ़ना, उसके सीखने की प्रतिक्रिया का संकेत है (फोस्टर और मोरान, 1985)। स्पेल्ड (1948) ने तो यह साबित कर दिया कि 28 सप्ताह का भ्रूण, शास्त्रीय अनुबंधित (Classically conditioned) किया जा सकता है। इससे अरस्तु और लॉक की बालक के जन्म से ही 'कोरी पट्टिका' (Blank slate, 'Latin: Tabula Rasa') (इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, 2016) होने के संप्रत्यय को तो नाकारा जा सकता है और जीन पियाज़े के निर्माणवादी दृष्टिकोण, जिसके अनुसार सभी ज्ञानतंत्र (Knowledge system) संवेदी प्रेरक यंत्र रचना (Sensory motor mechanism) के माध्यम से निर्मित होते हैं, जिसमें बच्चा आत्मसातीकरण और समायोजन के माध्यम से कई रूपरेखाएँ (Schemata's) बनाता जाता है (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005), को बल मिलता है।

संदर्भ

- कोर्ब, के. ए. 2009. *थ्योरीज़ ऑफ़ लर्निंग — कंसट्रक्टिविस्ट थ्योरीज़* (पावर पॉइंट स्लाइड).
- कौयौमदजियान, एच. 2012. लर्निंग थ्रू विजुअल्स — विजुअल इमेजरी इन द क्लासरूम. *साइकोलॉजी टुडे*. ससेक्स पब्लिशर्स, एल.एल.सी., न्यू यॉर्क.
- गैमों, जी. और कोल्ले, एम. 2001. *डिज़ाइनिंग फ़ॉर लर्निंग*. थाउज़ेंड ऑक्स, कोर्विन प्रेस, केलिफोर्निया.
- जोनासेन, डेविड एच. 1994. थिंकिंग टेक्नोलॉजी—टुवर्ड्स ए कंसट्रक्टिविस्ट डिज़ाइन मॉडल. *एजुकेशनल टेक्नोलॉजी*. 34(4). पृ. 34–37.
- डच, बी. जे., ग्रोह, एस. ई. और एलन, डी. ई. 2001. व्हाई प्रॉब्लम बेस्ड लर्निंग? ए केस स्टडी ऑफ़ इन्स्टिट्यूशनल चेंज इन अंडरग्रेजुएट एजुकेशन. संपादन में बी. डच., एस. ग्रोह, और डी. एलन. *द पावर ऑफ़ प्रॉब्लम बेस्ड लर्निंग*. स्टर्लिंग, स्टाइलस पब्लिशिंग, एल.एल.सी., वर्जीनिया. पृ. 3–11.
- डीवी, जॉन. 1938. *एक्सपीरियंस एंड एजुकेशन*. कम्पा डेल्टा पाई, न्यू यॉर्क.
- डेवन, पी. 2015. वर्ड्स वर्सस पिक्चर — लेवरेजिंग द रिसर्च ऑन विजुअल कम्युनिकेशन. संपादन में आर. बर्गार्ट. *पार्टनरशिप द कैनेडियन जर्नल ऑफ़ लाइब्रेरी एंड इनफ़ॉर्मेशन प्रैक्टिस एंड रिसर्च*. गेल्फ, यूनिवर्सिटी ऑफ़ गेल्फ़ लाइब्रेरी, ओंटारियो.
- प्लेटो. 2000. *द रिपब्लिक*. संपादन में जी. आर. फेरारी. *कैब्रिज टेक्स्ट इन द हिस्ट्री ऑफ़ पॉलिटिकल थॉट*. कैब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस. कैब्रिज, यूके. पृ. 27, 104, 131, 136.
- फोस्टर, जेम्स, डी. और मोरान स्लेन, टी. 1985. पियाजेट एंड पेराब्लेस — द कंवर्जेन्स ऑफ़ सेक्युलर एंड स्क्रिप्चरल व्यूज ऑफ़ लर्निंग. *जर्नल ऑफ़ साइकोलॉजी एंड थियोलॉजी*. ला मिराडा, कैलिफोर्निया, रोजमीड स्कूल ऑफ़ साइकोलॉजी, बायोला यूनिवर्सिटी. वॉल्यूम 13(2), पृ. 97–102.
- बाईबी, आर. डब्ल्यू. 1997. *अचीविंग साइटिफ़िक लिटरेसी—फ़ॉम पर्पज़ेज़ टू प्रैक्टिसेज*. पोर्ट्समाउथ, हेनमेन पब्लिशिंग, न्यू हेम्पशायर.
- बिर्ने, डी. पी. और वेल्सर, के. जी. 2012. *एनोज़िंग स्टूडेंट्स — यूज़िंग द यूनिट इन कॉम्प्रेहेंसिव लेसन प्लानिंग*. रोमन एंड लिटिलफील्ड एजुकेशन पब्लिशर्स, लान्हम, मेरीलैंड. इंकोर्प. पृ. 16.
- ब्रूनर, जेरोम एस. 1960. *द प्रोसेस ऑफ़ एजुकेशन*. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैब्रिज, मेसाचुसेट्स.
- . 1977. *द प्रोसेस ऑफ़ एजुकेशन*. ऑक्सफ़ोर्ड: हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. पृ. 8.
- मौरै, आर. 1996. *डिज़ाइनिंग ऑल्टरनेटिव असेसमेंट्स फ़ॉर इंटरडिसिप्लिनरी करिकुलम इन मिडिल एंड सेकंडरी स्कूल्स*. एलिन एंड बेकन, बोस्टन.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.
- . 2009. *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह— भारतीय भाषाओं का शिक्षण*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.
- वाइगोत्सकी, एल. 1978. *इंटरएक्शन बिटविन लर्निंग एंड डिवेलपमेंट*. संपादन में गौवैन और कोले. *रीडिंग ऑन द डिवेलपमेंट ऑफ़ चिल्ड्रन*. साइटिफ़िक अमेरिकन बुक्स. न्यू यॉर्क. पृ. 33–40.
- लिन, एल. 2015. *इन्वेस्टिगेटिंग चाईनीज़ एच.ई.ई.एफ़.एल. क्लासरूम— यूज़िंग कोलेबोरेटिव लर्निंग टू एन्हांस लर्निंग*. हीडलबर्ग, स्प्रिंगर.

हन्टर, सी. ए., पीयरसन, डी. के. और गुइर्रेज़, ए. आर. 2015. *इन्टरकल्चरालाइजेशन एंड टीचर एजुकेशन— थ्योरी टू प्रैक्टिस* वॉल्यूम 2. रूटलेज रिसर्च इन टीचर एजुकेशन. न्यू यॉर्क, रूटलेज. पृ. 135.

<https://www.britannica.com/topic/tabula-rasa>

<http://www.vincegowmon.com/inspiring-quotes-on-child-learning-and-development/>

<http://hr.cch.com/ELD/JacksonLewisClassActionTrendsSpring2017.pdf>.

https://www.slideshare.net/zahraBayani/humanism-vs-constructivism?from_action=save

<https://books.google.co.in/books?id=s4ZsDgAAQBAJ&pg=PT9&lpg=PT9&dq=>

<https://www.timeshighereducation.com>.

<https://www.timeshighereducation.com/comment/leader/leader-just-who-are-you-here-for/408080.article>

<http://onlinelibrary.wiley.com/doi/10.1111/j.1651-2227.1996.tb14272.x/epdf>.

निर्मितवाद और सीखना

अख्तर बानो*

इस लेख में यह बताया गया है कि आज की हमारी शिक्षा प्रणाली कठोरता लिए हुए है तथा जहाँ, हम बच्चों के रटने की प्रवृत्ति को समाप्त करके समझ विकसित करना चाहते हैं, वहीं हमें हमारी व्यूह रचनाओं, शिक्षण विधियों में भी परिवर्तन करना होगा। तभी बालक अपने जीवन को उद्देश्यपूर्ण बना सकेगा। इसके लिए हमें अपने शिक्षण में निर्मितवादी शिक्षण प्रविधि को अपनाना होगा, क्योंकि यह प्रविधि रटने के स्थान पर बालक के पूर्व ज्ञान और उसके अनुभवों पर आधारित है। यहाँ पर बालक तर्क करना, प्रश्न करना, संवाद करना और अपने साथियों के साथ सहयोग करना सीखता है। इस प्रविधि में बच्चे के स्वयं के अनुभव सीखने और समझ विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

प्रस्तावना

वर्तमान में हम जिस विद्यालयी व्यवस्था को अपनाए हुए हैं, उसमें एक कठोरता है। आज भी हम शिक्षा में सीखने-सिखाने के परंपरागत ढर्रे को अपनाए हुए हैं। हमारे विद्यालयों से निकलने वाला बच्चा केवल किताबी कीड़ा बनकर निकलता है, जिसे हम केवल सूचनाओं के आधार पर शिक्षा प्रदान करते हैं। जिस रचनात्मक माहौल में बच्चा सीखता है, उस माहौल को हम नकारते चले जाते हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली बच्चे के भविष्य को लेकर इतनी चिंतित है कि उसके वर्तमान को अनदेखा कर रही है। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005* के अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को इतना सक्षम बनाना है कि वह अपने जीवन का अर्थ समझ सकें, अपनी योग्यताओं का

विकास कर सकें, अपने जीवन का उद्देश्य समझ सकें और उन्हें पूरा करने का प्रयास कर सकें। यहाँ पर सोचने वाली बात यह है कि जब हम ‘समझ’ शब्द का प्रयोग बार-बार करते हैं, फिर यह ‘समझ’ शब्द को हमारी शिक्षा प्रणाली से अलग क्यों समझा जा रहा है? क्यों आज भी हमारी कक्षाएँ रटत प्रणाली पर चल रही हैं? क्यों बच्चों के वर्तमान को अनदेखा किया जा रहा है?

आज हमें आवश्यकता है अपनी कक्षाओं में निर्मितवादी शिक्षण प्रक्रिया व मान्यताओं को अपनाने की। निर्मितवाद शब्द आते ही हमारे ज़हन में कुछ प्रश्न आते हैं —

- निर्मितवाद क्या है?
- निर्मितवाद क्यों महत्वपूर्ण है?

- निर्मितवाद में कक्षा का वातावरण कैसा होगा?
- निर्मितवाद में शिक्षक की भूमिका क्या होगी?

निर्मितवाद, व्यवहारवाद व संज्ञानवाद से भिन्न दृष्टिकोण रखता है। जहाँ व्यवहारवाद व संज्ञानवाद ज्ञान को शाश्वत, स्थिर व अंतिम स्वीकार करते हैं, वहीं निर्मितवाद के अनुसार ज्ञान का अर्थ सीखने वाले के पूर्व अनुभवों के अनुरूप भिन्न-भिन्न होता है। निर्मितवाद अधिगम ज्ञान प्रदान करने व स्वीकार करने की प्रक्रिया को न मानते हुए अधिगमकर्ता की सक्रिय भागीदारी व अनुभवों का लाभ लेते हुए निर्मित करने पर बल देता है। बालक अपने संपर्क में आने वाले वातावरण से कई तरह के संप्रत्यय विकसित करता है, चाहे उनके वे संप्रत्यय बहुत स्पष्ट न हों, पर महत्वपूर्ण अवश्य हैं, क्योंकि उनका निर्माण स्वयं द्वारा किया गया होता है। निर्मितवाद के प्रवर्तकों में मुख्य रूप से वान ग्लेसरफ़ील्ड, जॉन डीवी, ब्रूनर, पियाज़े के नाम लिए जाते हैं। निर्मितवाद की जड़ें, दर्शनशास्त्र, शिक्षा, मनोविज्ञान आदि में देखी जा सकती हैं।

निर्मितवाद क्या है?

- ऐसी कक्षा जिसमें विद्यार्थी अत्यधिक सक्रिय हों।
- विद्यार्थी अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर तथा अपने अनुभवों के आधार पर नवीन ज्ञान का सृजन करते हों। साथ ही वे अपने अनुभवों के आधार पर नया अर्थ निकालते हों।
- ऐसी कक्षा जहाँ पर रटने की प्रवृत्ति नहीं होती।
- किसी भी समस्या का समाधान संवाद व अंतर्क्रिया द्वारा निकाला जाता है।
- जहाँ पर सहयोग के द्वारा काम किया जाता है।
- जहाँ पर शिक्षक एक मार्गदर्शक के रूप में काम करता है।

इन सभी बिंदुओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि परंपरागत शिक्षण से भिन्न निर्मितवाद एक ऐसी प्रविधि है, जिसमें बालक मानसिक रूप से अधिक सक्रिय रहता है। जिसमें बालक पूर्व ज्ञान व नवीन अनुभवों के आधार पर नवीन अर्थ का सृजन करता है। यहाँ पर बालक प्रश्न करना, तर्क करना, संवाद करना, सहयोग करना और अपने अनुभवों को अपने साथियों के साथ साझा करना सीखता है। बालक अपने अनुभवों पर आधारित चिंतन करते हुए ही नये ज्ञान का सृजन करते हैं। इसमें बालक के स्वयं के अनुभव ही उसे नवीन ज्ञान सीखने और समझ विकसित करने में मुख्य भूमिका अदा करते हैं।

निर्मितवाद महत्वपूर्ण क्यों?

निर्मितवाद अधिक महत्वपूर्ण इसलिए माना जा सकता है, क्योंकि यह राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005 के उद्देश्यों को पूर्ण करने में बहुत हद तक सहायक है। निम्न बिंदुओं के आधार पर यह देखा जा सकता है कि —

1. शिक्षण रटत प्रणाली से मुक्त होना चाहिए — निर्मितवाद में भी रटत प्रणाली की बात नहीं की जाती। यहाँ पर बच्चों का पूर्व ज्ञान व उसके अनुभवों के आधार पर ही नये ज्ञान को ढूँढ़ा जाता है, इससे ज्ञान के प्रति बालक की समझ विकसित होती है।
2. कक्षा ज्ञान को बाहरी जीवन से जोड़ना — निर्मितवाद कक्षा-कक्ष में गतिविधियों के आधार पर शिक्षक के साथ-साथ बच्चों के स्वयं के अनुभवों को शामिल करते हुए ही शिक्षण की बात करता है। निर्मितवाद यह मानकर चलता

है कि सीखना एक व्यवस्थित स्थान पर ही नहीं होता। सीखना एक सक्रिय प्रक्रिया होती है और उसको कक्षा की चार दीवारी में बाँधा नहीं जा सकता।

3. **विद्यार्थियों की पाठ्यपुस्तक एवं शिक्षक पर निर्भरता को कम करना** — निर्मितवाद केवल पाठ्यपुस्तक आधारित शिक्षण की बात नहीं करता, बल्कि बच्चों में उस विषय के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करता है तथा विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करता है, ताकि उस विषय के प्रति चिंतन अनुभव करें और उस विषय की गहराई को समझ सकें। शिक्षक का कार्य एक सुविधाप्रदाता के रूप में रहता है, जहाँ वह विद्यार्थियों को सभी संसाधन उपलब्ध कराता है। इस प्रकार यदि हम अपनी कक्षा में निर्मितवाद को अपनाते हैं, तो हम *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005* के उद्देश्यों को पूर्ण करने में बहुत हद तक सफल हो सकेंगे।

निर्मितवाद के मुख्य सिद्धांत

- अधिगमकर्ता निष्क्रिय श्रोता नहीं है, बल्कि ज्ञान के सृजन में सक्रिय भागीदार होता है।
 - ज्ञान देने व लेने की वस्तु नहीं है, जिसमें एक (शिक्षक) देने वाला और एक (बालक) लेने वाला हो।
 - संज्ञान का उद्देश्य अपने वातावरण के साथ अनुकूलन करना है, न कि ज्ञान का भंडार एकत्र करना।
 - ज्ञान सामाजिक वातावरण में निर्मित होता है।
 - अधिगम वातावरण लोकांतरिक, भयरहित होता है।
 - शिक्षक का उत्तरदायित्व अधिगम को दिशा देना तथा सहयोगी वाला होना चाहिए, अधिगम प्रक्रिया स्वचालित तथा विद्यार्थी-केंद्रित होनी चाहिए।
 - संप्रेषण, समूह में सीखना तथा विचारों का आदान-प्रदान निर्मितवाद में महत्वपूर्ण है।
- निर्मितवाद में प्रयुक्त विधियाँ व आव्यूह**
निर्मितवाद इस दृढ़ विश्वास पर आधारित है कि जब बालक ज्ञान के सृजन में स्वयं सक्रिय भागीदारी निभाता है तो प्राप्त ज्ञान ज्यादा प्रभावी, उपयोगी व स्थायी होता है। नया ज्ञान बालक के पूर्व अनुभवों के साथ बुना जाता है। अतः निर्मितवादी कक्षा में निम्न गतिविधियाँ कराई जा सकती हैं —
1. **प्रयोग** — विद्यार्थी छोटे-छोटे प्रयोगों को कर निष्कर्ष प्राप्त कर सकते हैं।
 2. **समस्या समाधान** — विद्यार्थियों के समक्ष दैनिक जीवन में जुड़ी लघु समस्याएँ प्रस्तुत की जाएँ एवं विद्यार्थी समाधान प्राप्त करें।
 3. **वार्तालाप** — किसी समस्या के समाधान हेतु कक्षा में वार्तालाप व मस्तिष्क उद्वेलन कराया जा सकता है।
 4. **शैक्षिक भ्रमण** — विद्यार्थी शैक्षिक महत्व के स्थलों का अवलोकन कर स्वयं अपने प्रयास से प्राकृतिक वातावरण में जानकारी प्राप्त करते हैं। इस दौरान वे अवलोकन कर, अपने पूर्व अनुभवों के साथ नवीन अनुभवों को जोड़ते हुए नए ज्ञान का सृजन करते हैं।
 5. **प्रोजेक्ट** — विभिन्न प्रकार के प्रोजेक्ट निर्माण में आने वाली बाधाओं का समाधान करते हुए

प्रोजेक्ट पूरा करने में स्वयं की गति व प्रयास से अधिगम किया जाता है।

6. सहभागी शिक्षण — जब बालक समस्या समाधान, चर्चा या गतिविधि छोटे-छोटे समूह में करता है तो ऐसी स्थिति में ज्ञान का सृजन ज्यादा तर्क आधारित व वस्तुनिष्ठ होता है।

उपरोक्त संकेतों के सिवाय वे सारे तरीके जिसमें बालक की सक्रिय भागीदारी से स्वयं के अनुभवों से अधिगम सुनिश्चित हो, निर्मितवाद का तरीका माना जाता है। रोजर बायबी ने स्थायी ज्ञान के लिए निर्मितवाद का 5Es (Engage, Explore, Explain, Elaborate, Evaluate) मॉडल प्रस्तुत किया है।

1. संलग्नता (Engage) — यह वह स्थिति है जब नए ज्ञान के सृजन हेतु पूर्व अनुभवों से जोड़ने का प्रयास है, नया ज्ञान सृजित करने हेतु वातावरण निर्मित करने का उद्देश्य निहित है। उदाहरणस्वरूप, विद्यार्थियों के पूर्व अनुभवों के आधार पर उनसे पूछा जाएगा कि आस-पास या विद्यालय में आपने कहाँ-कहाँ पर असमानताएँ देखी हैं। उसे अपनी उत्तर-पुस्तिका में लिखने को कहा जाएगा। विद्यार्थियों के लिखने के पश्चात् अपने साथी मित्र से इन असमानताओं को साझा करने और उस पर चर्चा करने को कहा जाएगा।

2. खोजना (Explore) — इसके अंतर्गत अपने अनुभवों को और गहनता प्रदान करता है। इसके लिए तुलना, वर्गीकरण आदि प्रक्रिया का समावेश होता है। संलग्नता में दिए गए उदाहरण

के अंतर्गत असमानताओं पर चर्चा करने के पश्चात् विद्यार्थियों को चार समूहों में विभाजित किया जाएगा। कक्षा में एक प्रपत्र वितरित किया जाएगा। इस प्रपत्र में चर्चा किए गए बिंदुओं को जाति के आधार पर असमानता, धर्म के आधार पर असमानता, लिंग के आधार पर असमानता संबंधित क्षेत्रों को वर्गीकृत करने को कहा जाएगा। प्रपत्र भरने के पश्चात् प्रत्येक समूह का प्रस्तुतीकरण करवाया जाएगा एवं दिए गए उदाहरणों को फ्लेनल बोर्ड पर प्रदर्शित किया जाएगा।

3. व्याख्या (Explain) — नवीन अनुभवों को कारणों के साथ जोड़ना अर्थात् तर्क के आधार पर नवीन ज्ञान को परखना। इसमें संलग्नता एवं खोजना में दिए उदाहरण की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। जिसमें विद्यार्थियों से प्रस्तुतीकरण के दौरान मन में उठे प्रश्नों को पूछने के लिए कहा जाएगा। विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुतीकरण के दौरान कई प्रश्न उभरकर सामने आए, जैसे—

- पूजा करने का कार्य उच्च वर्ग या विशेष वर्ग द्वारा ही क्यों किया जाता है?
- जूते बनाने या कपड़े धोने का कार्य उच्च वर्ग द्वारा क्यों नहीं किया जाता?
- किचन का कार्य मम्मी ही क्यों करती हैं?

कक्षा में इन प्रश्नों के आधार पर चर्चा की गई। जिसमें विद्यार्थियों ने धर्म, वर्ग, जाति को असमानता के लिए प्राथमिकता दी। विद्यार्थियों ने यह कहा कि यह आधार हमें एक-दूसरे से अलग करते हैं, जैसे—

- एक धर्म के लोग दूसरे धर्म के लोगों के साथ नहीं रहते।
- जातियों के आधार पर कार्यों का बँटवारा किया गया है।
- धनी, गरीब के साथ रहना पसंद नहीं करता है।

इस गतिविधि द्वारा जब विद्यार्थियों के सामाजिक अनुभवों को चर्चा का हिस्सा बनाया गया तो ज्ञात हुआ कि वे सामाजिक असमानता की व्याख्या अपने तरीके से करते हैं।

4. विस्तार (Elaborate) — नए निर्मित ज्ञान को और गहनता देने के उद्देश्य से नयी परिस्थितियों में विस्तारित किया जाना चाहिए। उपरोक्त चर्चा के पश्चात् सुविधाप्रदाता, सामाजिक असमानता व उसके उदाहरणों पर चर्चा करने के पश्चात् विद्यार्थियों का ध्यान इस ओर आकर्षित करने का प्रयास करेगा कि ऐसे कौन-से कारण हैं, जिनसे सामाजिक असमानता समाज में फैली है। विस्तारपूर्वक विद्यार्थियों से चर्चा की जाएगी एवं सामाजिक असमानता के कारणों को फ्लेनल बोर्ड पर प्रदर्शित किया जाएगा। विद्यार्थियों से चर्चा की जाएगी कि सामाजिक असमानता के प्रभाव समाज पर कहाँ-कहाँ दिखाई दे रहे हैं। क्या सामाजिक असमानता से हमारे समाज को लाभ हो रहा है? यह हमारे समाज पर इतनी तीव्रता से क्यों हावी है? इस प्रकार सुविधाप्रदाता विस्तारपूर्वक सामाजिक असमानता के कारणों व उससे पड़ने वाले प्रभावों पर चर्चा करेगा।

5. मूल्यांकन (Evaluate) — इसका उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि बालक द्वारा निर्मित ज्ञान

की स्थिति क्या है? उपरोक्त उदाहरणों, चर्चा आदि के माध्यम से विद्यार्थियों में सामाजिक असमानता के प्रति कितनी समझ विकसित हुई, यह इन प्रश्नों के माध्यम से जानने का प्रयास किया जाएगा। इसके अतिरिक्त आपने ऐसी घटना को देखा जो असमानता से संबंधित थी, उसे अपनी उत्तर पुस्तिका में गृह-कार्य के रूप में लिख कर लाने को कहा जा सकता है।

इस प्रकार 5Es मॉडल में पूर्व अनुभवों से प्रारंभ करते हुए, नवीन ज्ञान निर्मित किया जाना, तर्क व व्याख्या के आधार पर वस्तुनिष्ठ बनाना तथा नयी परिस्थितियों में लागू करना समाहित है।

निर्मितवाद और कक्षा-कक्ष वातावरण

जहाँ परंपरागत शिक्षण में कभी कक्षा का वातावरण अत्यधिक नीरस हो जाता है, वहीं निर्मितवादी अधिगम में कक्षा का वातावरण शिक्षक और विद्यार्थी के पारस्परिक सहयोग पर आधारित होता है। क्योंकि इसके अंतर्गत शिक्षक और विद्यार्थी दोनों सक्रिय भूमिका निभाते हैं। दोनों एक-दूसरे के सहायक के रूप में काम करते हैं। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि —

- निर्मितवादी कक्षा क्रिया आधारित होती है, जहाँ पर विद्यार्थी स्वायत्त होकर कार्य कर सकते हैं।
- निर्मितवादी कक्षा का वातावरण प्रजातांत्रिक होता है, जहाँ पर शिक्षक का विद्यार्थियों पर किसी प्रकार का बंधन नहीं होता।
- निर्मितवादी कक्षा, शिक्षक और विद्यार्थी के आपसी सहयोग पर आधारित होती है, दोनों एक-दूसरे का सहयोग करते हुए कार्य करते हैं।

- निर्मितवादी कक्षा में पूर्व ज्ञान व नवीन अनुभवों के आधार पर नवीन ज्ञान का सृजन किया जाता है।
- निर्मितवादी कक्षा ऐसी कक्षा होती है जहाँ पर विद्यार्थी को चिंतन करने, सोचने के अवसर प्रदान किए जाते हैं।
- निर्मितवादी कक्षा में शिक्षण गतिविधि आधारित होता है, वहाँ पर विद्यार्थी, शिक्षक के सहयोग से कुछ करके सीखने का प्रयास करता है।

इस प्रकार निर्मितवादी प्रविधि को अपने शिक्षण में अपनाकर हम अपनी कक्षा को सक्रिय रख सकते हैं। ऐसा शिक्षण परंपरागत शिक्षण से भिन्न एवं समझ पर आधारित शिक्षण होगा।

निर्मितवाद और शिक्षक की भूमिका

हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली पाठ्यपुस्तक और शिक्षक पर पूर्ण रूप से निर्भर है। शिक्षक व्याख्या द्वारा अपने ज्ञान का हस्तांतरण करता है और विद्यार्थी उसे ग्रहण करते हैं। परंपरागत शिक्षण में शिक्षक सक्रिय भूमिका निभाता है, जबकि विद्यार्थी निष्क्रिय भूमिका निभाते हैं। कई बार तो कक्षा अत्यधिक नीरस लगती है। निर्मितवादी कक्षा में केवल शिक्षक ही सक्रिय नहीं रहता, यहाँ पर शिक्षक और विद्यार्थी दोनों सक्रिय भूमिका निभाते हैं। शिक्षक के निर्देशन में विद्यार्थी अपने पूर्व ज्ञान तथा अनुभवों के आधार पर सीखते हैं और कक्षा में सामाजिक वातावरण में नवीन ज्ञान का निर्माण करते हैं। निर्मितवाद में शिक्षक की भूमिका अग्रलिखित प्रकार से महत्वपूर्ण मानी जाती है —

- निर्मितवाद आधारित कक्षा में शिक्षक की भूमिका जिज्ञासा उत्पन्न करने वाली तथा रुचि जाग्रत करने वाली होती है।
- शिक्षक कक्षा में विद्यार्थियों के सामने ऐसा वातावरण पैदा करता है जिसमें विद्यार्थी अपने आपको अकेला महसूस नहीं करते अर्थात् शिक्षक विद्यार्थियों को सहारा देने वाला होता है।
- शिक्षक एक सुविधाप्रदाता की भूमिका अदा करता है, वह अपने शिक्षण के दौरान कक्षा-कक्ष में विद्यार्थियों के समक्ष संपूर्ण संसाधन उपलब्ध करता है।
- शिक्षक विद्यार्थियों से उसके पूर्व-ज्ञान के अनुभवों को प्राप्त करता है और उन्हें चिंतन के अवसर प्रदान करता है।
- शिक्षक विद्यार्थियों को संवाद करने, तर्क करने के लिए प्रोत्साहित करता है, जिससे विद्यार्थी अपने मन की बात शिक्षक के सामने रख पाते हैं।
- शिक्षक एक मार्गदर्शक के रूप में अपनी भूमिका निभाता है और समय-समय पर बालकों की सहायता करता है।
- शिक्षक कक्षा में ऐसा प्रजातांत्रिक वातावरण प्रस्तुत करता है, जिसमें बालक बिना किसी बंधन के सीखते चले जाते हैं।
- शिक्षक अपनी बात को अत्यधिक सहज व सरल तरीके से विद्यार्थियों के समक्ष रखता है।
- शिक्षक विद्यार्थियों द्वारा दिए गए विचारों को धैर्य के साथ सुनता है और अंतर्क्रिया द्वारा उस समस्या का समाधान प्राप्त करता है।

इस प्रकार निर्मितवाद में शिक्षक एक है तो वह विद्यार्थियों की रटने वाली प्रवृत्ति को सुविधाप्रदाता, सहायक, मार्गदर्शक के रूप में समाप्त करके समझ पर आधारित शिक्षण की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यदि शुरुआत कर सकता है और ऐसा ज्ञान विद्यार्थियों शिक्षक अपने शिक्षण में निर्मितवाद को अपनाता के लिए स्थायी ज्ञान होगा।

संदर्भ

- छाबरा, रजनी. 2012. चैलेंजिंग रोल ऑफ टीचर इन मॉडर्न पर्सपेक्टिव्स. *टीचर्स टुडे*. अक्टूबर-दिसंबर अंक. सेकंडरी एजुकेशन, राजस्थान, बीकानेर.
- जोनासेन. डी. 2003. डिज़ाइनिंग कंस्ट्रक्टिविस्ट लर्निंग एनवायरन्मेंट. <http://tiger.coe.missouri.edu/Jonassen>.
- सिंह, पी. डी. 2014. टीचर इन सर्च ऑफ न्यू पर्सपेक्टिव्स. *टीचर्स टुडे*. जनवरी-मार्च अंक. सेकंडरी एजुकेशन, राजस्थान, बीकानेर.
- स्कालिड. 2003. एप्लिकेशन ऑफ कंस्ट्रक्टिविस्ट प्रिंसिपल्स टु द प्रैक्टिस ऑफ इंस्ट्रक्शनल टेक्नॉलोजी. <http://etad.usaka.cal802/papers/skaalid/appeication.html>

एक अनूठा विज्ञान खंड

विज्ञान शिक्षण को रचनात्मक बनाने का एक प्रयास

जागृति रसिकलाल वकील*

विद्यार्थियों में किसी विषय के प्रति रचनात्मक रुचि उत्पन्न कर सीखना-सिखाना हो तो गतिविधि आधारित शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया अर्थात् विधियों का पढ़ाते समय प्रयोग करना जरूरी है। इसी बात का ध्यान रखते हुए मातृछाया कन्या विद्यालय, (भुज, गुजरात) की सहायक शिक्षक (शोधक) द्वारा विद्यार्थियों में विज्ञान विषय के प्रति रुचि विकसित करने के लिए एक क्रियात्मक शोध किया गया। इस शोध पत्र में दिया गया है कि शोधक ने कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों के साथ मिलकर विद्यालय के एक कक्ष को विज्ञान खंड बनाया, जिसे एक अनूठा विज्ञान खंड नाम दिया गया। इस विज्ञान खंड में विद्यार्थियों ने विज्ञान विषय की विषय-वस्तु पर आधारित अनुपयोगी सामग्री का उपयोग करते हुए विभिन्न मॉडल बनाए। शोधक ने कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों को प्रयोगात्मक समूह एवं नियंत्रित समूह में विभाजित कर इन्हीं मॉडलों के आधार पर प्रयोगात्मक समूह के विद्यार्थियों को पढ़ाया, जबकि नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों को परंपरागत विधि से पढ़ाया। परिणामस्वरूप प्रयोगात्मक समूह के विद्यार्थियों में नियंत्रित समूह के विद्यार्थियों से विज्ञान विषय में रचनात्मकता, सृजनता एवं वैज्ञानिक कौशल अधिक पाया गया। साथ ही प्रयोगात्मक समूह के विद्यार्थी स्वयं मॉडल बनाकर विज्ञान विषय की संकल्पनाएँ सीखने लगे। जिससे वे स्वयं, साथी विद्यार्थी तथा आस-पड़ोस की शालाओं के विद्यार्थी भी लाभांविता हुए। इस प्रकार विज्ञान को पढ़ाने के तरीकों में बदलाव करना आज की महती आवश्यकता है।

प्रस्तावना

विद्यार्थी, विज्ञान में रचनात्मक रुचि लेकर अलग-अलग प्रयोगों के द्वारा अपने आस-पास के वातावरण से ज्ञान प्राप्त करें तो विज्ञान जैसे रचनात्मक विषय से विद्यार्थियों की अरुचि को दूर किया जा सकता है। विज्ञान और व्यवहार, दोनों अगर एक साथ चलें तो गणित जैसे कठिन विषय में भी रुचि प्राप्त की जा सकती है जो शिक्षण के

लिए आवश्यक है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए वर्ष 2015-16 में कक्षा 9वीं के विज्ञान विषय पर क्रियात्मक शोध कार्य किया गया। जिसका शीर्षक 'एक अनोखा विज्ञान खंड' था।

महान वैज्ञानिक आइंस्टाइन कहते हैं, "मैं कभी पढ़ता नहीं, केवल पढ़ूँ ऐसा माहौल पैदा करता हूँ।" आज की जागरूक पीढ़ी के लिए शिक्षक को भी अधिक जागरूक बनना पड़ेगा।

बच्चों में अपार शक्ति, साहस, जिज्ञासा और रचनात्मकता का विशाल भंडार भरा होता है। उनको केवल सही मार्गदर्शन देने की आवश्यकता है, फिर देखिए वो कैसे अपनी रचनात्मकता से नए-नए रास्ते ढूँढ़ लाते हैं?

इस क्रियात्मक शोध कार्य को करते हुए मुझे शिक्षक से ज्यादा एक विद्यार्थी होने का अनुभव आनंद से भर देता है। जो मुझे कक्षा 9वीं में इस क्रियात्मक शोध के दौरान प्राप्त हुआ।

कक्षा 9वीं में नयी शिक्षण-अधिगम प्रणाली के अनुसार विद्यार्थियों के संपूर्ण विकास के लिए विज्ञान विषय के प्रति विद्यार्थियों में रुचि उत्पन्न करना अनिवार्य है। इसमें कौन-सी नयी प्रविधि अपनाएँ? विद्यार्थियों में विज्ञान विषय में रुचि बढ़ाने के लिए ऐसा प्रोजेक्ट दिया जाए, जिससे विद्यार्थियों को उस प्रोजेक्ट को करने में रुचि जाग्रत हो।

यह सब सोचकर ही कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों के साथ चर्चा की गई। चर्चा से शिक्षण जगत में प्रोजेक्ट पद्धति की अनूठी भेंट देने वाले जॉन ड्युई की बात याद आई, “शाला लघु समाज है।” इस अर्थ में शाला सामाजिक जागरण का केंद्र भी है। शिक्षण उत्कृष्टता का सामाजिक आयाम भी है। ऐसा सोचकर मैंने (शोधक ने) विद्यार्थियों से कहा कि हम एक ऐसे प्रोजेक्ट पर कार्य करेंगे जिसका शीर्षक है— “एक अनूठा विज्ञान खंड।” जिसकी शुरुआत में विज्ञान के तोरण, छत आदि के झूमर, दीवार फ्रेम, अलमारी में खंड, फ्रिज, पेन स्टैंड, पिगी बैंक, शोकेस में खिलौने आदि विज्ञान से संबंधित होने चाहिए। जो अनुपयोगी सामग्री से बनाने होंगे।

समस्या कथन

कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में रुचि उत्पन्न करने के लिए एक अनूठा विज्ञान खंड बनाना। क्रियात्मक शोध करने के संभावित कारण इस प्रकार हैं—

- विद्यार्थी विज्ञान विषय की पढ़ाई में कम ज़ोर या लापरवाह हैं।
- विज्ञान सिखाने में शिक्षकों द्वारा केवल ‘चॉक एंड टॉक’ का प्रयोग करना।
- विद्यार्थियों के मन में विज्ञान का डर।
- विज्ञान विषय शिक्षण में आधुनिक तकनीक का उपयोग नहीं होना।
- विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में रुचि नहीं होना।
- विद्यार्थियों को विज्ञान विषय की संकल्पनाओं का स्पष्ट ज्ञान न होना।

इन सब कारणों की संभावना होने के कारण शोधक ने शिक्षण-अधिगम की पद्धति में परिवर्तन की ज़रूरत महसूस की।

क्रियात्मक शोध के उद्देश्य

- कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय की शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सहभागिता बढ़ाना।
- विद्यार्थियों से विज्ञान विषय में समझ, ज्ञान एवं वैज्ञानिक कौशलों का विकास करना।
- विद्यार्थियों में स्व-निर्मित और सृजनात्मक साधन के जरिये सृजनात्मक शक्ति का विकास करना।
- विद्यार्थियों में अवलोकन शक्ति, तर्कशक्ति, जिज्ञासावृत्ति का विकास करना।

- पर्यावरण संरक्षण के 3Rs, (Reduce, Reuse, Recycle) में से पुनः उपयोग (Reuse) — अनुपयोगी सामग्री में से बेस्ट वैज्ञानिक मॉडल बनाकर अपने आप समझकर व्यवहार में उपयोग करना सीखना।

प्रविधि

यह क्रियात्मक शोध मातृछाया कन्या विद्यालय, भुज (गुजरात) के कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों को दो समूह 'क' व 'ख' में विभाजित कर किया गया। प्रायोगिक समूह 'क' को स्वयं शोधक द्वारा विद्यार्थियों के सहयोग से बनाए वैज्ञानिक मॉडल द्वारा और नियंत्रित समूह 'ख' को परंपरागत पद्धति द्वारा एक माह तक शोधक द्वारा पढ़ाया गया। प्रायोगिक समूह के साथ चर्चा कर वैज्ञानिक मॉडल से पढ़ाया गया। जिसमें एक अनोखा विज्ञान खंड बनाया गया। जिसके प्रवेश द्वार पर विज्ञान के तोरण, छत पर विज्ञान के झूमर, दीवार पर विज्ञान का फ्रेम, अलमारी में खंड, फ्रिज, पेन स्टैंड, पिगी बैंक, शोकेस में

खिलौने आदि विज्ञान के थे। यह सब घर में जो अनुपयोगी सामग्री पड़ी थी, उनमें से बेस्ट (अच्छी) विज्ञान मॉडल बनाए गए। जो विज्ञान विषय की विषय-वस्तु पर आधारित थे। जबकि नियंत्रित समूह को सामान्य चॉक एंड टॉक (परंपरागत) पद्धति से पढ़ाया गया।

प्रायोगिक समूह ने बड़े उत्साह से एक से बढ़कर एक मॉडल्स बनाएँ और एक अनोखा विज्ञान खंड तैयार किया। इस तरह विद्यार्थियों ने विज्ञान में स्वयं रुचि लेकर कई चीजें सीखीं। एक माह के पश्चात् दोनों समूहों के परिणामों के आधार पर गुणवत्ता को परखा गया।

प्रदत्त संकलन

इस क्रियात्मक शोध में प्रायोगिक समूह 'क' और नियंत्रित समूह 'ख' को लिया गया और दोनों के लिए सिखाने वाले, सीखने वाले, सिखाने की बातें, समयावधि आदि को एक समान रखा गया।

अनुपयोगी सामग्री से बनाए गए मॉडल



रेडियो



ओवन



वेक्यूम क्लीनर

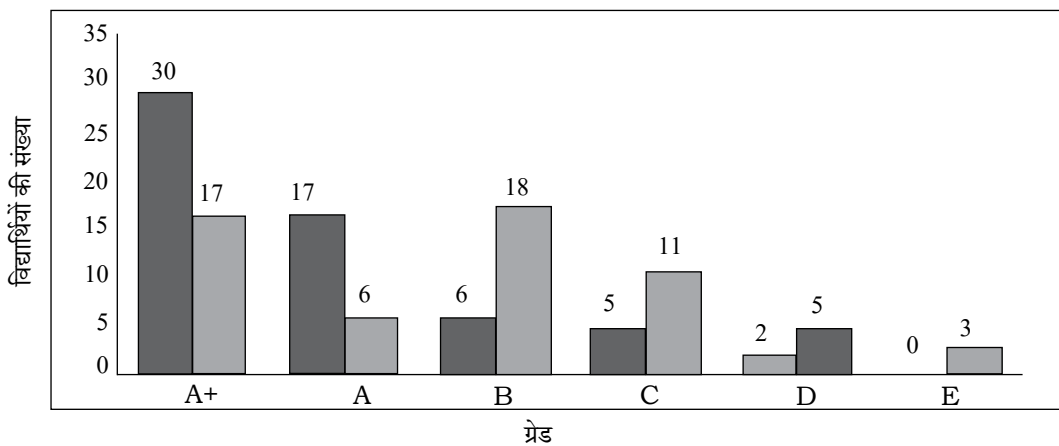


विज्ञान ए.टी.एम.

समीक्षा

सारणी 1 — समूहवार न्यादर्श में चयनित विद्यार्थियों का परिणाम

समूह	विद्यार्थियों की संख्या	ग्रेड					
		A+	A	B	C	D	E
प्रायोगिक समूह 'क'	60	30	17	6	5	2	0
नियंत्रित समूह 'ख'	60	17	6	18	11	5	3



ग्राफ 1— ग्रेड के अनुसार विद्यार्थियों की संख्या

परिणाम

- प्रयोगात्मक समूह के प्रत्येक विद्यार्थी की विज्ञान में रचनात्मकता, सृजनता और वैज्ञानिक कौशल पाया गया।
- अधिकतर विद्यार्थी इन रचनात्मक कार्यों से उत्साहित होकर विज्ञान विषय पढ़ने लगे।
- विषय-वस्तु के आधार पर खुद ही नए-नए मॉडल्स बनाने के कारण विज्ञान की संकल्पनाएँ बताने लगे।
- दूसरे विषयों में भी इसी तरह अनुपयोगी सामग्री से बेस्ट मॉडल्स बनाकर प्रोजेक्ट कार्य कर सृजनात्मक कार्य करने लगे।

इस प्रकार कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों ने अपने मनपसंद काम में भरपूर रचनात्मकता दिखाई और जो विद्यार्थी विज्ञान के डर की वजह से दूर भागने लगे थे, वे अब रुचि लेने लगे थे, यही इस क्रियात्मक शोध की सबसे बड़ी सफलता थी। खुद के द्वारा तैयार किए मॉडल का आनंद तो बच्चों ने उठाया ही, पर उनसे ज्यादा खुशी बच्चों के माता-पिता को थी। अब वे इस बात से काफी खुश थे कि उनके बच्चे विज्ञान जैसे विषय में रुचि लेकर उत्साह से नए-नए मॉडल तैयार कर सीख रहे हैं।

अपनी शाला के नज़दीक दूसरी शालाओं के विद्यार्थियों को भी इन मॉडलों को देखने के लिए निमंत्रण दिया गया। अनोखा विज्ञान खंड देखने के पश्चात् विद्यार्थी और उनके शिक्षक भी अभिप्रेरित हुए। इस बेहतर कार्य की गूँज केवल हमारी शाला तक ही सीमित न रहकर दूसरी शालाओं तक भी पहुँची।

अंत में इतना कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों में कला, सूझबूझ, कौशल, रचनात्मकता सब कुछ है। ज़रूरत सिर्फ़ उन्हें उपयुक्त अवसर प्रदान करने की है। अगर विज्ञान विषय में प्रोजेक्ट पद्धति को अपनाया जाए तो सही अर्थों में विद्यार्थियों का संपूर्ण विकास होगा।

उपसंहार

विद्यार्थियों में वैज्ञानिक कौशल को विकसित करने में विज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। अतः विज्ञान को पढ़ाने के तरीकों में बदलाव करना आज की ज़रूरत है। इन विषयों को रुचिपूर्ण बनाना होगा, तभी विद्यार्थी आने वाले समय में नयी-नयी वैज्ञानिक खोजों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएँगे और यही खोजें दुनिया को एक नये युग की ओर ले जाएँगी।

खेल-खेल में गणित शिक्षण

प्रतीक चौरसिया*

सोमू सिंह**

गणित विषय को समझना एवं समझाना, दोनों ही एक संज्ञानात्मक क्रिया है। सामान्यतः गणित को एक जटिल विषय माना जाता है और गणित सीखने एवं सिखाने के तरीके भी अन्य विषयों से अलग होते हैं जिसकी वजह से विद्यार्थियों में भय एवं चिंता के साथ गणित में अरुचि भी होने लगती है। इस लेख में पहले गणित शिक्षण व खेलों में समानता एवं खेलों के माध्यम से ज्ञान और तर्क को विकसित करने के लिए सैद्धांतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किए गए हैं। तत्पश्चात् शिक्षण की कुछ रोचक गतिविधियाँ और खेल प्रस्तुत किए गए हैं। यह लेख गणित को खेल के सहयोग से कैसे पढ़ाएँ — इस पर आधारित बिंदुओं को चिह्नित करता है। खेल की गतिविधियों, उनकी भूमिका तथा प्रकृति को बेहतर ढंग से समझना एवं गणित के अध्यापन को उपयोग में लाना महत्वपूर्ण है। यह लेख उपर्युक्त बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए गणित को खेल-खेल में कैसे सिखाएँ एवं गणित शिक्षण में खेलों का प्रयोग कैसे करें? इस पर आधारित है।

प्रस्तावना

सभी उम्र के लोग अपनी-अपनी रुचि के हिसाब से खेल खेलना पसंद करते हैं। खेल चाहे जिस भी प्रकार का हो, उसमें हम सभी अपनी बुद्धि का प्रयोग अवश्य ही करते हैं। खेल को एक ऐसे रूप में भी देखा जा सकता है, जिसमें हम सभी अपनी बुद्धि का इस्तेमाल सबसे बेहतर तरीके से करते हैं। जिसके कई कारण हैं, जैसे — संपूर्ण ध्यान केंद्रित होना, रुचि का होना, तत्पर होना, स्व-प्रेरित होना, नवीन चुनौतियों को सहज रूप से स्वीकारना एवं उनका समाधान निकालने की विधि को खोजना आदि।

खेल हमेशा व्यक्ति को कार्य करने हेतु प्रेरित करने का काम करता है और साथ-ही-साथ मौलिक

अवधारणाओं जैसे कि, गिनती करना, संख्या का प्रयोग करना, एक-एक कर निश्चित नियमों पर चलना, संख्यात्मक तथा स्थानिक संरचनाओं का समन्वय करना और रणनीतियों का पता लगाने के अवसर प्रदान करता है। विद्यार्थियों को गणितीय खेलों में सार्थक रूप से शामिल करने, चुनौतियाँ देने से विद्यार्थियों को संख्या संयोजन, अनुमानों का उपयोग करने, पैटर्न और अन्य महत्वपूर्ण गणितीय संरचनाओं को समझने, चिंतनशील तर्क विकसित करने एवं अवधारणाओं को तलाशने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। इसके अलावा, खेल विद्यार्थियों में गणितीय समझ और तर्क का विकास करने के लिए भी अवसर प्रदान करते हैं। शिक्षकों को

* शोधार्थी, शिक्षा संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश – 221005

** सहायक आचार्य, शिक्षा संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश – 221005

खेल खेलने के लिए विद्यार्थियों को अवसर प्रदान करना चाहिए तथा गणितीय विचारों को उभरने देना चाहिए, क्योंकि खेलों से विद्यार्थियों को नए पैटर्न, समीकरण और रणनीतियों की जानकारी मिलती है। प्रत्येक व्यक्ति खुद को स्वस्थ रखने या मनोरंजन करने के लिए कोई-न-कोई खेल अवश्य ही खेलता है। खेल व्यक्ति के जीवन में एक ऊर्जा के स्रोत की तरह काम करता है, जिससे वह अपनी मानसिक एवं शारीरिक अवस्था को ऊर्जावान रखता है। खेलों का विद्यार्थी जीवन में बहुत ही अधिक योगदान होता है एवं प्राथमिक स्तर पर गणित सीखने में खेल महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। खेल विद्यार्थियों में कई तरह के गुणों का विकास करते हैं, जैसे—

- विभिन्न खेलों के माध्यम से विद्यार्थियों में तर्क का विकास होता है।
- विभिन्न खेलों के माध्यम से विद्यार्थियों में सहयोग की भावना, व्यक्ति का सम्मान करना, नेतृत्व क्षमता, संप्रेषण-कौशल जैसे मूल्यों का विकास होता है।
- खेल हमेशा रणनीतिक गणितीय तर्क (Strategic Mathematical Reasoning) को प्रोत्साहित करते हैं, क्योंकि खेलों के माध्यम से विद्यार्थियों में समस्याओं को सुलझाने और संख्याओं के प्रति उनकी समझ को बढ़ाने के लिए विभिन्न रणनीतियाँ मिलती हैं।
- खेल गणना से नियम बनाने एवं गणना का प्रवाह (Fluency of Counting) विकसित करने में विद्यार्थियों की सहायता करते हैं।

- खेल के दौरान शिक्षक विद्यार्थियों का निरीक्षण कर सकते हैं तथा उनकी क्षमताओं व कौशलों का आकलन कर सकते हैं। साथ ही उन्हें विभिन्न खेलों के माध्यम से गणित सिखाने में सहायता मिलती है।
- खेल अभ्यास के लिए विभिन्न अवसर प्रदान करते हैं तथा विद्यार्थियों के मध्य छोटे-छोटे समूहों में एक साथ कार्य करने के कौशल का विकास करते हैं।
- खेलों में विद्यार्थियों को संख्या प्रणाली के साथ नियमों का पालन करने एवं तार्किक गतिविधियों से परिचित होने का अवसर मिलता है।
- विभिन्न प्रकार के खेलों से विद्यार्थियों में चिंतनशील तर्क की गहरी समझ विकसित होती है।
- खेलों को विद्यालय एवं गृह कार्यों से भी जोड़ दिया जाए तो विद्यार्थियों का शारीरिक, तार्किक एवं बौद्धिक विकास करने में सहायता मिल सकती है। साथ ही, माता-पिता भी घर पर अपने बच्चों के साथ खेल खेलकर उनकी गणितीय समझ का विकास कर सकते हैं।

गणित एवं खेलों की प्रकृति

गणित पैटर्न और संबंधों का विज्ञान है, जो तर्क और रचनात्मकता, दोनों पर निर्भर करता है। एक सैद्धांतिक अनुशासन के रूप में, गणित बिना किसी चिंता के ‘संबंधों के संबंधों’ (Relationships of Relationships) की खोज करता है। गणित का सार इसकी तार्किक सुंदरता और इसकी बौद्धिक चुनौती में निहित है। गणित एक व्यावहारिक विज्ञान भी है; गणित पैटर्न और संबंधों के लिए खोज करता

है। गणितीय सोच अक्सर अमूर्त प्रक्रिया के साथ शुरू होती है अर्थात् दो या दो से अधिक वस्तुओं या घटनाओं के बीच सहसंबंध बनाते हुए आगे बढ़ती है।

गणितीय खेल खेलते समय खेल की सबसे मूलभूत अवधारणाओं का पता लगाया जाता है। विद्यार्थियों को खेल को खेलना एवं एक-दूसरे को प्रेरित करना मनोरंजक लगता है। हालाँकि यह इस बात पर निर्भर करता है कि खेल किस प्रकार के हैं और कितने अच्छे तरीके से इनका संचालन हो रहा है।

यदि खेल शुरू करते हैं तो यह अच्छी 'रणनीतियों के प्रतिमान' (Models of Strategies) एवं किसी भी धारणा को प्रकट करने तथा संज्ञानात्मक रणनीति बनाने के अवसर प्रदान करते हैं। जब विद्यार्थी खेल गतिविधि में लगे हुए होते हैं तो उन्हें समझने और समझाने में मानसिक योग्यता और कौशलों का उपयोग होता है। खेल विद्यार्थी समूहों के साथ अच्छे संबंधों को विकसित करने और निरंतर सीखने के लिए प्रेरित करता है।

मानसिक एकाग्रता और खेल

गणित के खेल खेलना, विद्यार्थियों में रणनीतिक सोच, समस्या को हल करने एवं प्रवाह को विकसित करने के लिए प्रोत्साहन देता है। यह बिना विफलता एवं भय के विद्यार्थियों को एक अलग संदर्भ में सीखने और उनके समकक्षों के साथ गणित की व्याख्या और चर्चा करने का अवसर प्रदान करता है। एक अच्छा खेल विद्यार्थियों में संज्ञानात्मक और भावनात्मक स्तरों पर विकास के कई अवसर प्रदान

करता है। अर्थात् चुनौती को खेल के साथ शामिल किया जाना चाहिए। विद्यार्थियों को नए अवसर मिलेंगे और सीखने में कोई भी समस्या नहीं होगी। जैसा कि गणितीय खेल, गणितीय कौशल, पैटर्न और संबंध का विश्लेषण करने में सहायता करते हैं, इन्हें विद्यार्थी की उम्र का ध्यान रखते हुए उचित तरीके से उपयोग करना चाहिए। कई गणित के खेल हैं जो मूल रूप से अभ्यास (Drills) पर आधारित हैं तथा तथ्यों के साथ विचारों के प्रवाह को बनाए रखने में सहायक हैं। साथ ही कुछ ऐसे गैर-गणितीय खेल हैं, जिनके निरंतर अभ्यास से गणितीय कौशलों, समस्या समाधान, तार्किक समझ आदि का विकास होता है।

खेल चाहे जो भी हो, उसमें मानसिक एकाग्रता का बहुत ही योगदान होता है। मानसिक एकाग्रता का स्तर प्रत्येक व्यक्ति तथा प्रत्येक खेल में अलग-अलग तरह से उपयोग में आता है। किसी भी खेल में जब कोई व्यक्ति खेलने को तैयार हो तो वह पूरी तत्परता एवं एकाग्रता के साथ अपनी सहभागिता देता है, जैसे—शतरंज ऐसा खेल है, जिसमें उच्च स्तर की बौद्धिक योग्यता की आवश्यकता होती है। इस खेल को विशेष तौर पर अधिक बुद्धि-लब्धि एवं एकाग्रता वाले व्यक्तियों के लिए माना जाता है। इस खेल में केवल घोड़े, हाथी या राजा, रानी ही नहीं होते, बल्कि चरण-दर-चरण चिंतन एवं अत्यधिक तर्क का प्रयोग भी होता है।

खेल एवं गणित

खेल एवं गणित में एक समानता विशेष रूप से पाई जाती है। वह है, दोनों ही तत्परता के नियम पर आधारित हैं। जब तक कोई विद्यार्थी सीखने

के लिए या खेलने के लिए तत्पर न हो; कोई भी शिक्षक उसको पूरी तरह से सीखा नहीं सकता। गणित सीखने एवं खेल खेलने की प्रक्रियाओं में क्रमबद्धता का रूप देखने को मिलता है। जिसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि अगर विद्यार्थियों को खेल-खेल में गणित सिखाया जाए या गणित को खेल की तरह सिखाया जाए तो बच्चे गणितीय भय से दूर हो सकेंगे एवं उनका गणितीकरण पूर्ण रूप से हो सकेगा।

गणित सबसे जटिल विषय के रूप में माना जाता है, क्योंकि इसकी अभ्यास की प्रवृत्ति तार्किक है, जो कि अन्य-विषयों से अलग है। इसमें प्रत्येक चरण एक-दूसरे चरण पर आधारित होकर ही विकसित होता है। अनेक मनोवैज्ञानिकों, शिक्षाशास्त्रियों एवं दर्शनशास्त्रियों, जैसे— जीन पियाज़े, वाइगोत्सकी, ब्रूनर आदि ने इस बात पर हमेशा बल दिया है कि विद्यार्थियों को हमेशा उस तरह से सिखाएँ जिस तरह से वे सीख सकते हैं। उनकी मानसिक योग्यता, उनके पूर्व-अनुभव, उनको सीखने के लिए तत्पर बनाना एवं उनके सीखने के तरीकों का अध्ययन करना एक शिक्षक के लिए बेहद आवश्यक है। सामान्यतः सभी बच्चे अपनी-अपनी योग्यता एवं शारीरिक क्षमता के अनुसार खेल में रुचि लेते हैं। इसलिए अगर एक शिक्षक यह प्रयास करे कि खेल की विधियों से या विद्यार्थियों को खेल के निकट ले जाकर गणित-शिक्षण किया जाए एवं गणित-शिक्षण में अर्थपूर्ण शिक्षा को जोड़ा जाए तो उसकी जटिलता कुछ हद तक सरल हो सकती है। क्योंकि जब तक सिखाया हुआ ज्ञान बच्चे अपने व्यवहार में उतार

नहीं लेते, शिक्षक का कार्य पूरा नहीं हो सकता। एक शिक्षक की भूमिका मात्र ज्ञान व सूचनाओं को प्रदान करना नहीं है, अपितु उसके कार्यों में भी परिवर्तन लाना है। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005* के अनुसार, “शिक्षक की भूमिका विद्यार्थियों को सीखने के क्रम में एक सुगमकर्ता (facilitator/ सुविधा प्रदान करने वाला) की तरह सहयोग देना है।”

उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद् एवं राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की गणित पाठ्यपुस्तकों का अवलोकन

चौरसिया और गोस्वामी (2015) ने अपने शोध पत्र, जो की बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश के कक्षा 6 के गणित पाठ्यपुस्तक के विश्लेषण पर आधारित थी, में पाठ्यपुस्तक का कई पहलुओं के आधार पर विश्लेषण किया। ये पहलू थे — (1) गतिविधियाँ और भागीदारी; (2) समूह चर्चा; (3) आँकड़े और आरेखन संबंधी प्रतिनिधित्व; (4) दैनिक जीवन के लिए व्यावहारिकता और प्रासंगिकता; (5) कोशिश करें/स्वयं की जाँच करें; (6) उदाहरण और चित्र; (7) चिंतनशील सोच और तर्क; (8) विषय-वस्तु का तार्किक अनुक्रमण; (9) अभ्यास; और (10) निष्कर्ष।

इन सभी पहलुओं के आधार पर विश्लेषण किया गया एवं प्रमुख निष्कर्ष के रूप में यह पाया गया कि उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद् की पाठ्यपुस्तक में अध्यायों के अंदर सामग्री का तार्किक अनुक्रमण उपयुक्त है, जो कि गणित की प्रकृति के साथ मेल खाता है और पाठ्यपुस्तक इन पहलुओं के साथ न्याय करती है। उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद् की पाठ्यपुस्तक में “क्रियाकलाप और भागीदारी”

का कुल प्रतिशत 2.15 है, जहाँ राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) की पाठ्यपुस्तक में इस गतिविधि का प्रतिशत 4.36 प्रतिशत है, जो उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद् की किताब से 2.21 प्रतिशत अधिक है। उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद् पाठ्यपुस्तक में “अभ्यास में कुल प्रश्न” का कुल प्रतिशत 31.14 है, वहीं दूसरी ओर एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यपुस्तक में इस गतिविधि का प्रतिशत 24.92 है। यह उत्तर प्रदेश बोर्ड की पाठ्यपुस्तक से 6.22 प्रतिशत कम है। उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद् पाठ्यपुस्तक में “समूह चर्चाओं” का कुल प्रतिशत 0.75 है, वहाँ एन.सी.ई.आर.टी. पाठ्यपुस्तक में इस गतिविधि का प्रतिशत 2.35 है। ये उत्तर प्रदेश बोर्ड की किताब से 1.60 प्रतिशत अधिक है।

इसी आधार पर उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद् की पाठ्यपुस्तकों एवं एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यपुस्तकों का अध्ययन एवं अवलोकन करने पर ये भी पाया गया कि दोनों पाठ्यपुस्तकों को आकर्षक रूप से प्रस्तुत किया गया है तथा ये विद्यार्थी-केंद्रित हैं। पाठ्यपुस्तक एक ऐसी शृंखला का हिस्सा है जो सतत एवं विकासशील ज्ञान का आधार रखती है। गणित की पाठ्यपुस्तकों के आवरण, नाम और क्रम संख्या सभी स्पष्ट रूप से मुद्रित एवं रंगीन हैं, परंतु उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद् की पाठ्यपुस्तकों में आरेख, रेखाचित्र तथा चित्रों को अत्यधिक साफ़ मुद्रित करने की ज़रूरत है। दोनों पाठ्यपुस्तकों में विषय-वस्तु को पारंपरिक तरीके से न प्रस्तुत करके रचनात्मकता के साथ प्रस्तुतीकरण किया गया है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की पाठ्यपुस्तकों में विभिन्न अध्यायों को प्रकरण के आधार पर अलग-अलग भागों में विभाजित किया गया है। इसमें एक संक्षिप्त समीक्षा है और विषय का प्रस्तुतीकरण विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से किया गया है। तत्पश्चात् प्रश्नों को हल और अभ्यास के साथ प्रस्तुत किया गया है। यह उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद् की पाठ्यपुस्तक में सामान्य रूप से मौजूद नहीं है। हालाँकि, गणित की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, यह समझा जाना चाहिए कि एक पाठ्यपुस्तक सब कुछ प्रदान नहीं कर सकती। गणित पाठ्यपुस्तकों की भी अपनी सीमा है तथा कक्षा में पाठ्यपुस्तक-सामग्री के साथ-साथ खेलों एवं गतिविधियों का उचित तरीके से समावेशन किया जाना चाहिए।

पाठ्यपुस्तकों में खेल-विधि के सहयोग से पढ़ाने पर भी विशेष बल दिया जाना चाहिए, जो कि उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद् की पाठ्यपुस्तकों में कुछ कम पाया जाता है। वहीं दूसरी तरफ़ राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की पाठ्यपुस्तकों में तर्क एवं खेलों का उचित समावेश देखने को मिलता है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की पाठ्यपुस्तकों में इस पर विशेष ध्यान दिया गया है कि विद्यार्थियों को खेल-विधि से कैसे सिखाया जाए? जैसा कि हम सब जानते हैं कि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की पाठ्यपुस्तकें मानक पुस्तकें होती हैं। इन पाठ्यपुस्तकों में खेल विधि से पढ़ाने एवं विद्यार्थियों में गणित के प्रति रुचि पैदा करने के कई तरीके दिए गए हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005 में भी प्रमुखता से कहा गया है कि विद्यार्थियों को उनके स्तर के आधार पर गणित सिखाना एवं उनके विचारों में गणित को शामिल करना ज़रूरी है, जिससे उनका गणितीकरण संभव हो सके।

“गणितीकरण के लिए विद्यार्थियों की क्षमताओं का विकास करना ही गणित शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है”

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005

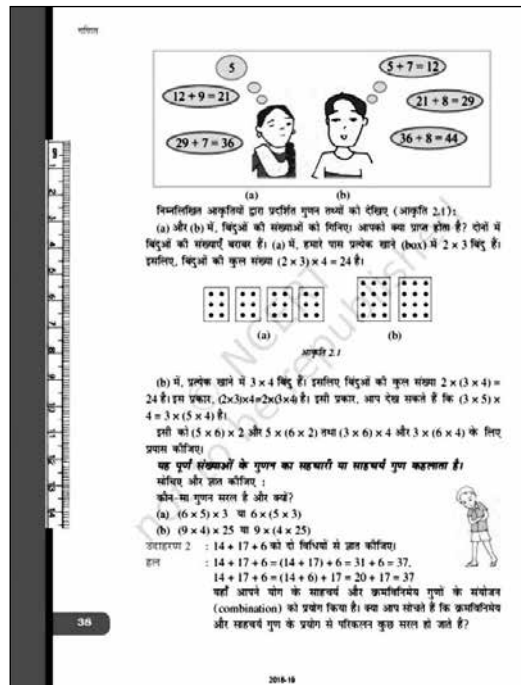
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की गणित पाठ्यपुस्तकों में निहित कुछ प्रमुख खेल एवं गतिविधियाँ

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की पाठ्यपुस्तकें हमारे राष्ट्र में मानक पाठ्यपुस्तकें हैं और ये पुस्तकें राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005, “शिक्षा बिना बोझ के” (learning without burden, 1993) समिति की अनुशंसाओं एवं बाल-केंद्रित शिक्षाशास्त्र पर आधारित हैं।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की पाठ्यपुस्तकों का अवलोकन करने के पश्चात् यह पाया गया कि एन.सी.ई.आर.टी. की कक्षा 6, 7 एवं 8 की पाठ्यपुस्तकों में विशेषतः बीजगणित एवं मेंसुरेशन पर आधारित क्रिया एवं गतिविधियाँ पाई जाती हैं।

मुख्य रूप से विद्यार्थी जब कक्षा 5 से कक्षा 6 में अपने अंकगणित ज्ञान को सीख कर आता है, वहाँ उसे बीजगणित एवं व्यंजक जैसी अमूर्त चीज़ों से सामना करना पड़ता है। उस परिस्थिति में एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यपुस्तकों में विशेष रूप से बीजगणित एवं

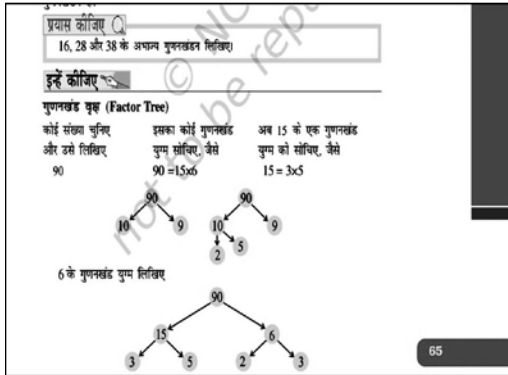
तर्क का उपयोग किया गया है, जिसकी सहायता से विद्यार्थियों को बीजगणित एवं उसके मूलभूत प्रत्यय को समझने में विशेष मदद मिलती है।



चित्र 1

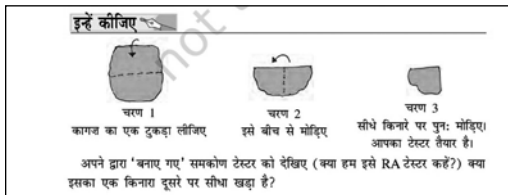
इसी प्रकार एन.सी.ई.आर.टी. की कक्षा 6, 7 एवं 8 की पाठ्यपुस्तकों का अवलोकन करने के पश्चात् पाया गया कि इन पाठ्यपुस्तकों में विभिन्न प्रकार के खेलों पर आधारित गतिविधियों को समझाया गया है। एन.सी.ई.आर.टी. की कक्षा 6 की गणित पाठ्यपुस्तक में पृष्ठ संख्या 36 पर प्ले द गेम नाम के सेक्शन से विद्यार्थियों में संख्याओं का गुणा एवं विभिन्न प्रकार के डॉट्स की सहायता से गुणा को समझाने का प्रयास किया गया है (चित्र 1)। एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यपुस्तकों में भी विभिन्न प्रकार के ज्यामितीय खेल, संख्यात्मक खेल एवं अन्य गतिविधियों का

उपयोग कर विद्यार्थियों को गणित की अमूर्तता को समझाने का बेहतर ढंग से प्रयास किया गया है।



चित्र 2

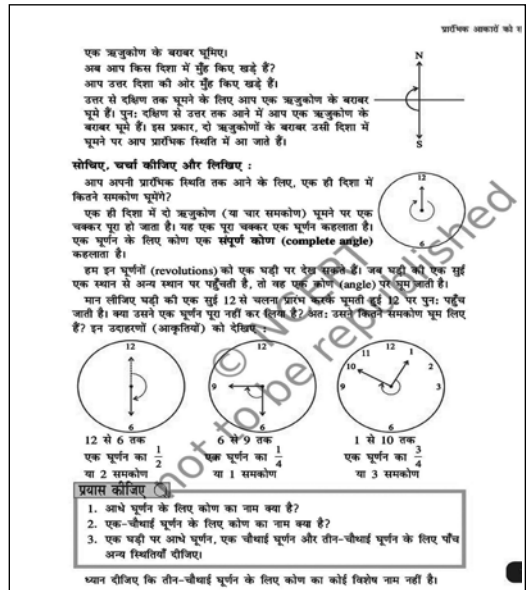
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की कक्षा 6 की पुस्तक के पृष्ठ संख्या 36 पर दिए गए गुणखंड वृक्ष (Factor Tree) में विद्यार्थियों को गुणा करना सिखाया गया है (चित्र 2)। इस तरह के खेलों का प्रयोग शिक्षक अपनी कक्षा में कर सकते हैं तथा प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों को जोड़, घटाव, गुणा सिखाने में मदद कर सकते हैं।



चित्र 3

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की पाठ्यपुस्तकों में इन सभी खेलों के अलावा कागज़ से की गई क्रियाओं पर भी विशेष बल दिया गया है, जिसे हम ओरीगेमी मेथड के नाम से भी जानते हैं (चित्र 3)। बहुत सारी गतिविधियाँ तो इस प्रकार से दी गई हैं, जिनमें आकृतियों को

समझाना एवं पेपर को अलग-अलग आकार में बनाना सिखाया गया है। चित्र 3 में एक पेपर को तीन भाग में मोड़कर कोण के विषय में विद्यार्थियों को समझाया गया है।



चित्र 4

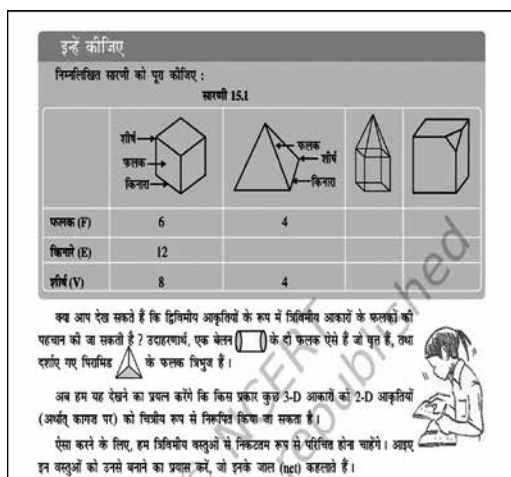
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की पाठ्यपुस्तकों में घड़ी पर आधारित खेल भी शामिल किए गए हैं। जैसा कि विद्यार्थी अपने दैनिक जीवन में घड़ी की सहायता से समय प्रतिदिन देखते हैं। ऐसी क्रियाएँ विद्यार्थी-केंद्रित होती हैं, जिनका उपयोग करके विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार के गणितीय कौशलों को सिखाया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर एन.सी.ई.आर.टी. की कक्षा 6 की गणित पाठ्यपुस्तक की पृष्ठ संख्या 99 पर घड़ी की सहायता से कोण एवं विभिन्न प्रकार के कोण के बारे में विद्यार्थियों को परिचित कराने का उचित तरीका प्रस्तुत किया गया है (चित्र 4)।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की कक्षा 7 की पाठ्यपुस्तक में भी विभिन्न प्रकार के खेलों का उचित एवं समुचित ढंग से वर्णन है, जिनके आधार पर विद्यार्थियों में तर्क एवं गणित के कौशलों का विकास करना बेहद सरल और सहज मालूम पड़ता है। एन.सी.ई.आर.टी. की कक्षा 7 की गणित की पाठ्यपुस्तक में पृष्ठ संख्या 295 एवं 307 पर घन एवं पिरामिड जैसे जटिल चित्रों के सभी भागों का वर्णन एक टेबल के रूप में किया गया है, उस तरह की गतिविधियाँ विद्यार्थियों से प्रश्न-उत्तर करने, उन्हें सोचने एवं विचार करने का समुचित अवसर प्रदान करते हैं। पृष्ठ संख्या 281 पर रेखा आकृति के आधार पर ज्यामितीय चित्र बनाने के सही तरीके का वर्णन है, जिसका उपयोग शिक्षक अपनी कक्षा में अन्य रेखागणित की आकृतियों को बनाने एवं समझाने के उपयोग में कर सकते हैं। एक शिक्षक की सबसे बड़ी भूमिका है कि वह उन आकृतियों को चिह्नित करे एवं कक्षा में अपने विद्यार्थियों

के सामने प्रस्तुत करे। पृष्ठ संख्या 299 एवं 300 में घनाभ बनाने जैसे चित्रों को डॉट एंड बॉक्स जैसे खेल से जोड़कर बनाना सिखाया गया है। इस तरह के खेलों को, जैसा कि बताया जा चुका है, विद्यार्थियों में संज्ञानात्मक विकास एवं तर्कशक्ति का विकास करने के लिए सबसे उपयुक्त माना गया है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की पाठ्यपुस्तकों में इनके अलावा कुछ अन्य प्रकार के नवीन खेलों का भी वर्णन है, जैसे— छाया खेला। इस खेल के उपयोग से हम विद्यार्थियों को क्रीडास्थल या कक्षा में धूप एवं आकृति का उपयोग कर विद्यार्थियों को बदलते हुए कोण, आकृति की विशेषताएँ एवं विभिन्न आकृतियों से बनने वाले प्रतिबिंबों से विभिन्न प्रकार की आकृतियों के विभिन्न आयाम प्रदर्शित कर सकते हैं। अतः इन पाठ्यपुस्तकों का अवलोकन करने के पश्चात् यह पाया गया कि पाठ्यपुस्तकों की अपनी एक सीमा होती है। परंतु एक शिक्षक अपनी कक्षा में शिक्षण के लिए आत्मनिर्भर होता है और विभिन्न प्रकार की शिक्षण विधियों का समायोजन कर अपने शिक्षण को सफल बनाने के लिए स्वतंत्र होता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि एक शिक्षक अगर अपनी कक्षा में गणित पढ़ाते समय विभिन्न खेलों का उपयोग उचित तरीके से एवं विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए कराए तो वह अपने गणित शिक्षण को रुचिकर बनाने में सफल हो सकता है। अतः विद्यार्थियों के समक्ष गणित को केवल एक ज्ञान के रूप में न प्रस्तुत करते हुए, शिक्षक को प्रयास करना चाहिए कि वह विभिन्न प्रकार के खेलों का समायोजन करते हुए गणित



चित्र 5

शिक्षण को खेल-खेल में पूरा करने का प्रयास करो। जिसके लिए विभिन्न प्रकार के मॉड्यूल, विभिन्न प्रकार के फ्री एंड ओपन सॉफ्टवेयर एवं अन्य प्रकार की शिक्षण सामग्री उपलब्ध हैं, जिनका उपयोग कर शिक्षक अपनी शिक्षण विधि को प्रभावशाली बना सकते हैं।

उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद् की गणित पाठ्यपुस्तकों में निहित कुछ प्रमुख खेल गतिविधियाँ

बेसिक शिक्षा परिषद् उत्तर प्रदेश की पाठ्यपुस्तकों में निहित खेल एवं तार्किक गतिविधियाँ भी इस बात पर विशेष बल देती हैं कि खेल के माध्यम से भी गणित को रुचिकर विधि द्वारा विद्यार्थियों को सिखाया जा सकता है। बेसिक शिक्षा परिषद् उत्तर प्रदेश बोर्ड की तीन कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों का अवलोकन किया गया, जिसमें कक्षा 6 आओ सीखें अंकगणित, कक्षा 6 आओ सीखें बीजगणित तथा रेखागणित, कक्षा 7 आओ सीखें अंकगणित, कक्षा 7 आओ सीखें बीजगणित तथा रेखागणित, कक्षा 8 आओ सीखें अंकगणित एवं कक्षा 8 आओ सीखें बीजगणित तथा रेखागणित की पुस्तकें शामिल हैं। अवलोकन करने पर यह स्पष्ट रूप से पाया गया कि उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद् की गणित की वर्तमान पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005 की प्रमुख भूमिका रही है एवं इनका निर्माण इसी के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। पाठ्यपुस्तकों की विभिन्न क्रियाओं में तर्क, गणना करना एवं अमूर्त प्रत्यय को समझाने का प्रयास खेलों एवं खेल गतिविधियों के द्वारा किया गया है।

(2) प्रत्येक पंक्ति में 2 गोलिएँ
पंक्तियों की संख्या = 6
गोलियों की कुल संख्या = $2 \times 6 = 12$

(3) प्रत्येक पंक्ति में 3 गोलिएँ
पंक्तियों की संख्या = 4
गोलियों की कुल संख्या = $3 \times 4 = 12$

(4) प्रत्येक पंक्ति में 4 गोलिएँ
पंक्तियों की संख्या = 3
गोलियों की कुल संख्या = $4 \times 3 = 12$

(5) प्रत्येक पंक्ति में 5 गोलिएँ रखने पर प्रत्येक पंक्ति में गोलिएँ की संख्या समान रखने की व्यवस्था नहीं बनती है, परन्तु एक पंक्ति में 12 गोलिएँ को रखने पर एक पंक्ति बन जाती है।
पंक्ति की संख्या = 1
गोलियों की कुल संख्या = $12 \times 1 = 12$

(6) प्रत्येक पंक्ति में 6 गोलिएँ
पंक्तियों की संख्या = 2
गोलियों की कुल संख्या = $6 \times 2 = 12$

(7) प्रत्येक पंक्ति में 12 गोलिएँ रखने पर प्रत्येक पंक्ति में गोलिएँ की संख्या समान रखने की व्यवस्था नहीं बनती है, परन्तु एक पंक्ति में 12 गोलिएँ को रखने पर एक पंक्ति बन जाती है।
पंक्ति की संख्या = 1
गोलियों की कुल संख्या = $12 \times 1 = 12$

इन गणनाओं में ध्यान देना है कि 12 को विभिन्न प्रकार (विधियों) से दो संख्याओं के गुणनफल के रूप में लिखा जा सकता है।
 $12 = 1 \times 12$; $12 = 2 \times 6$; $12 = 3 \times 4$; $12 = 4 \times 3$
 $12 = 6 \times 2$; $12 = 12 \times 1$;
 इस प्रकार 1, 2, 3, 4, 6 और 12 संख्या 12 के विभाजक हैं। इनमें 12 के अपवर्तक कहा जाता है।

कोई संख्या चिन-चिन संख्याओं के पूरी-पूरी विभाजित हो जाती है तो संख्याएँ उस संख्या की अपवर्तक कहलाती हैं।

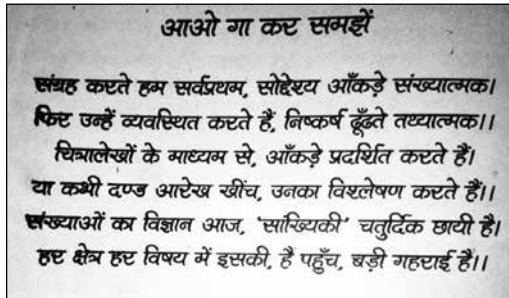
आइए अब अंकगणित पाठ्यपुस्तक के माध्यम से अपवर्तक के कुछ रोचक तथ्यों पर विचार करें और निम्नलिखित निकालें:

70 अंकगणित - 6

चित्र 6

कक्षा 6 की आओ सीखें अंकगणित पाठ्यपुस्तक की इकाई 4 'अपवर्तक तथा अपवर्त्य' में गोलिएँ/मार्बल (Marble) की सहायता से एक क्रिया में विद्यार्थियों को अपवर्तक प्रत्यय के विषय में समझाने का प्रयास किया गया है। जिसमें 12 गोलिएँ के इस्तेमाल से उन्हें पंक्तियों में इस प्रकार व्यवस्थित करने को कहा गया है कि प्रत्येक पंक्तियों में गोलिएँ की संख्या समान हो (चित्र 6)। इस तरह की खेल गतिविधियों से विद्यार्थियों में बढ़ते हुए पैटर्न के माध्यम से तर्क एवं संख्याओं के प्रति समझ विकसित करने में सहायता मिलती है। इसी प्रकार पृष्ठ संख्या 75 पर गुणनखंड वृक्ष (Factor Tree) की मदद से विद्यार्थियों को गुणनखंड के प्रकार एवं गुणनखंड युग्म में लिखने के तरीके को बताया गया है। इसका प्रयोग कर शिक्षक अपनी कक्षा में विद्यार्थियों में संख्या एवं उसके अभाज्य

गुणनखंड लिखने में सहायता कर सकते हैं। इसी पाठ्यपुस्तक में पृष्ठ संख्या 174 पर गणित को एक विशेष रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसे संगीत के माध्यम से समझाने का प्रयास किया गया है। इसमें “आओ गाकर समझें” (चित्र 7) शीर्षक



चित्र 7

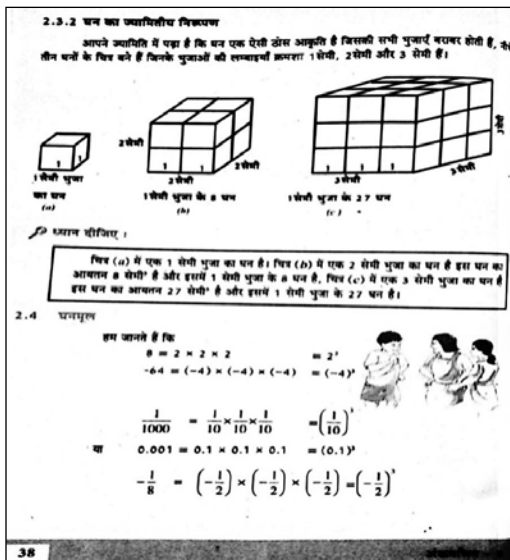
नाम से एक गणितीय कविता लिखी गई है, जिसमें विद्यार्थियों को आँकड़े, निष्कर्ष, विश्लेषण एवं सांख्यिकी जैसे शब्दों का इस्तेमाल कर गणित से परिचित कराने एवं गणित में रुचि विकसित करने का प्रयास किया गया है। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि खेल मानव जीवन में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं तथा कक्षा में विद्यार्थियों के मानसिक एवं शारीरिक विकास में सहायक होते हैं, जिनमें स्थानीय खेलों का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। शिक्षक को कक्षा में इस बात का विशेष ध्यान देना चाहिए कि विद्यार्थियों के लिए किस प्रकार की खेल क्रियाओं की व्यवस्था की जाए।

इसी पाठ्यपुस्तक की पृष्ठ संख्या 140 पर ‘आँकड़ों का अभिलेखन’ करना विद्यार्थियों को मिठाई के नाम से समझाया गया है, जैसे — गुलाब जामुन और जलेबी आदि अन्य मिठाइयों के नाम से विद्यार्थियों को आँकड़ों का अभिलेखन करना

सिखाया गया है। इस तरह के खेल को शिक्षक कक्षा में ब्लैकबोर्ड पर विद्यार्थियों को समूह में बैठाकर करा सकते हैं। इसी क्रम में कक्षा 7 की अंकगणित पाठ्यपुस्तक में पृष्ठ संख्या 99 पर अंको को परिमेय संख्या के रूप में व्यक्त करना सिखाया गया है। इस तरह के खेलों से विद्यार्थियों को अंकों पर आधारित विभिन्न प्रकार के सवाल को हल करना, दशमलव संख्या के प्रयोग एवं विशेषताओं को जानने में भी सहायता मिलती है।

कक्षा 7 की पाठ्यपुस्तक आओ सीखें बीजगणित तथा रेखागणित में पृष्ठ संख्या 45 पर तार्किक प्रश्नों को रेखीय समीकरण की सहायता से हल करना सिखाया गया है। इसमें निम्नलिखित सारणी में रिक्त स्थानों की पूर्ति अपनी अभ्यास पुस्तिका में करने का निर्देश दिया गया है। इस तरह की सारणी को शिक्षक कक्षा में ब्लैकबोर्ड पर बनाकर विद्यार्थियों को विभिन्न समूह में बैठाकर एक-एक करके उत्तर प्राप्त कर सकते हैं। जिसके आधार पर विद्यार्थियों में कक्षा में सहभागिता को बढ़ावा दिया जा सकता है, साथ ही साथ सोचने की शक्ति एवं समीकरण समझाने तथा उनके हल निकालने में सहायता मिल सकती है। कक्षा 8 की पाठ्यपुस्तक आओ सीखें अंकगणित में पृष्ठ संख्या 111 पर संख्या एवं उनके वर्गमूल पर आधारित तालिका का उपयोग किया गया है, जिसका उपयोग कक्षा में विद्यार्थियों को समूह में बैठाकर विभिन्न संख्याओं का वर्गमूल निकालना एवं उनके उपयोग करने में लिया जा सकता है। इस तरह की गतिविधियाँ विद्यार्थियों में पैटर्न से सामान्यीकरण करना, नयी परिस्थितियों में सोचना एवं तर्क करने की क्षमता को बढ़ावा देते हैं।

इस तरह के खेल बेसिक शिक्षा परिषद् उत्तर प्रदेश बोर्ड की पाठ्यपुस्तक में विभिन्न जगहों पर अंकित हैं। एवं विधिवत रूप से इस्तेमाल किए गए हैं।



चित्र 8

इसी पुस्तक की पृष्ठ संख्या 38 पर 'घन का ज्यामितीय निरूपण' खेल के माध्यम एवं चित्रों का इस्तेमाल करते हुए समझाया गया है। इस गतिविधि में घन का निरूपण एवं उसकी सभी भुजाओं को एक ठोस आकृति के रूप में प्रदर्शित कर क्रमशः तीन चित्रों के माध्यम से समझाया गया है (चित्र 8)।

इस तरह की गतिविधियाँ विद्यार्थियों में तर्क करने, चित्रों को समझने एवं बढ़ते हुए पैटर्न को समझने की क्षमताओं का विकास करती हैं। साथ ही साथ इसका उपयोग प्रारंभिक स्तर पर तर्क के विभिन्न आयामों को बढ़ावा देने एवं विकसित करने के उपयोग में किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश की पाठ्यपुस्तकों में केवल गतिविधि एवं खेलों पर ही

इसे जानें

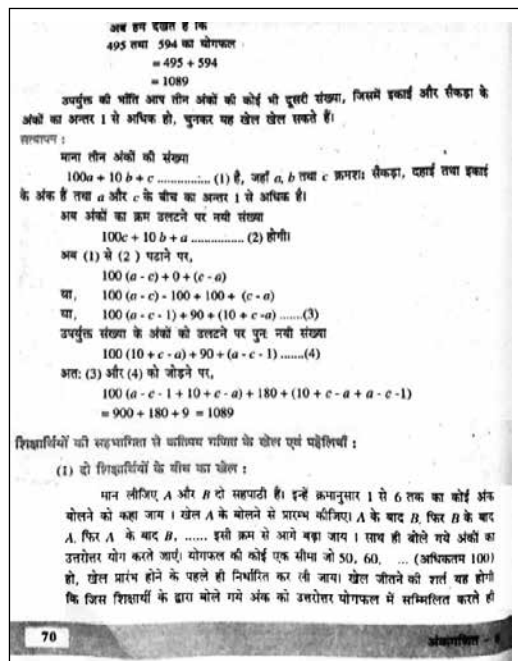
हार्डी रामानुजन संख्या 1729

एक बार प्रोफेसर जी.एच.हार्डी रामानुजन से मिलने गये। उस समय रामानुजन अपनी बीमारी के इलाज के लिये अस्पताल में भर्ती थे। बातें करते समय हार्डी ने रामानुजन से कहा मैं जिस टैक्सी से आया हूँ उसका नम्बर 1729 था, और यह एक शुभ संख्या नहीं है। रामानुजन ने तुरन्त उत्तर दिया – नहीं यह एक रोचक (interesting) संख्या है। उन्होंने बताया कि यह ऐसी सबसे छोटी संख्या है जिसे दो घनों के योग के रूप में दो प्रकार से लिखा जा सकता है। तब से इस संख्या 1729 को 'हार्डी रामानुजन संख्या' कहा जाने लगा। रामानुजन इस विशेषता की खोज उसी समय कर चुके थे जब वह मेट्रिक में थे।

अभ्यास 2(d)

चित्र 9

बल नहीं दिया गया, साथ-ही-साथ कुछ विशेष प्रकार के गतिविधियों को भी विद्यार्थियों को बताया गया है, जिससे विद्यार्थियों की रुचि गणित में बने एवं गणित सीखने के प्रति लगाव पैदा हो सके। उदाहरण के तौर पर पृष्ठ संख्या 57 पर 'इसे जानें' के नाम से एक बेहद रोचक प्रकरण का जिक्र किया गया है, जिसे हार्डी रामानुजन संख्या 1729 के नाम से बताया गया है (चित्र 9)।



चित्र 10

कक्षा 8 की पाठ्यपुस्तक में संख्याओं से खेल का एक पाठ है, जिस पाठ के अंतर्गत कई प्रकार की क्रियाएँ एवं खेल गतिविधियाँ विद्यार्थियों को कराई गई हैं, जैसे — दो शिक्षार्थियों के बीच का खेल, संख्या बूझने का खेल, संख्या बूझने की एक और पहेली, का उपयोग किया गया है। जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि खेल और गणित दोनों ही आपस में परस्पर संबंध रखते हैं (चित्र 10 एवं 11)। अतः खेलों के माध्यम से कक्षा एवं कक्षा के बाहर शिक्षक विद्यार्थियों को गणित से रूबरू करा सकते हैं एवं गणित के प्रति रुचि पैदा कर सकते हैं। जिससे विद्यार्थियों के मन में गणित के प्रति आने वाले भय जिसे कि सामान्यतः हम गणित की चिंता (Math Anxiety) एवं गणित का भय (Math Phobia) के नाम से भी जानते हैं, का समाधान संभव है।

इस प्रकार कक्षा 6, 7 एवं 8 की गणित पाठ्यपुस्तकों का अवलोकन करने के बाद निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि ये पुस्तकें बाल केंद्रित एवं राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005 पर आधारित हैं। इन पाठ्यपुस्तकों का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों में तर्क, चिंतनशील तर्क एवं विभिन्न प्रकार के अवलोकन पर आधारित गतिविधियाँ कराना है। जिसका उपयोग शिक्षक अपनी कक्षा में करे तो वह अपने विद्यार्थियों में गणित के कौशलों का विकास कर सकता है।

खेल एवं गणित शिक्षक

शिक्षक द्वारा खेल-खेल में गणित शिक्षण करने के लिए कुछ मौलिक सुझाव—

- कुछ खेलों की संरचना व नियमों में आंशिक परिवर्तन करना चाहिए ताकि वह गणितीय समझ को विकसित करने का माध्यम भी बन सकें।
- कुछ नये रोचक खेलों को विभिन्न स्रोतों से खोजकर विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है।
- प्रारंभिक शिक्षक को विद्यालयी समय-सारणी व शैक्षिक कैलेंडर में खेलों का उचित समावेश करने हेतु प्रयास करना होगा।

योगफल पूर्ण निर्धारित सीमा वाली संख्या के बीच बराबर हो जाता है, यहाँ शिक्षार्थी विद्यार्थी पोषित किया जाएगा। स्पष्ट है कि दोनों संख्याओं को समकालपूर्वक 1 से 6 के बीच के अंक जोड़ने होने तथा शरीर इकट्ठा करने होने वाले योगफल को ध्यान में रखना होगा।

यह खेल 6 के स्थान पर 7, 8 या 9 लेकर भी खेला जा सकता है। जीतने का रहस्य विद्यार्थी स्वयं खोजे।

(2) संख्या बूझने का खेल :

इस खेल में बच्चा के सभी विद्यार्थी एक साथ भाग ले सकते हैं। सभी विद्यार्थियों को 1 से 9 तक का कोई एक लेने को कहा जाता है। सभी गयी संख्या में 5 से गुणा कर गुणफल में 6 जोड़ने को कहा जाता है। पुनः इस प्रकार प्रत्येक योगफल में 4 से गुणा कर गुणफल में 9 जोड़ने को कहा जाता है। इस नये योगफल में पुनः 5 से गुणा करने को कहा जाता है। इस अंतिम गुणफल को विद्यार्थियों से एक-एक करके पढ़ाया तथा इसमें से 165 घटाकर योगफल को 100 से भाग देकर भागफल ज्ञात कीजिए। यही भागफल वाली संख्या उस विद्यार्थी द्वारा प्रारंभ में लिया गया अंक होगा।

संख्या (विद्यार्थी द्वारा लिया गया अंक) किया प्रकार से भुझी जाती है, यह विद्यार्थियों को शतपाठिता से ज्ञात किया जाय।

इसी प्रकार से बूझने के अन्य प्रत्येक-पहेलीय विद्यार्थियों से बनवायी जाय।

(3) संख्या बूझने की एक और पहेली :

किरी शिवाजी को 10 से छोटी दो संख्याएँ लेने को कहा जाता है। पहली संख्या के बीच गुने में 7 जोड़कर प्रत्येक योगफल में 2 का गुणा करने को कहा जाता है। इस प्रकार प्रत्येक गुणफल में ही गयी दूसरी संख्या जोड़ने को कहा जाता है। इस प्रकार प्रत्येक योगफल उस विद्यार्थी से बताने को कहा जाता है।

योगफल में से 14 घटाकर जो संख्या प्राप्त होती है, उसके अंक ही उस विद्यार्थी द्वारा प्रारंभ में ली गयी संख्याएँ होती हैं।

इस पहेली के बूझने का रहस्य विद्यार्थियों की चतारवा से जाना जाय।

उदाहरण : मान लीजिए विद्यार्थी ने 10 से छोटी दो संख्याएँ क्रमशः 3 एवं 8 लिया है।

अब उपर्युक्त संहित किया जाएगा,

$$2(5 \times 3 + 7) + 8 - 14 = (44 + 8) - 14$$

$$= 38$$

जो विद्यार्थी द्वारा ली गयी संख्याओं (अंकों) 3 और 8 से बनी है।

एक और उदाहरण देखिए।

चित्र 11

- विद्यार्थियों द्वारा खेले जाने वाले लोक प्रचलित एवं अन्य प्रकार के खेलों को चिह्नित कर सूची तैयार की जाए।
- खेलों के लिए आवश्यक सामग्री का निर्माण शिक्षक को स्वयं करना चाहिए व विद्यार्थियों के सहयोग से भी इसे तैयार करना प्रभाबशाली साबित हो सकता है।

- कक्षा-कक्ष वातावरण व खेल मैदान का आवश्यकता के अनुसार उपयोग करने की ऐसी कार्ययोजना तैयार करनी चाहिए कि अन्य विषयों का अध्ययन-अध्यापन बाधित न हो।
- खेलने के दौरान विद्यार्थियों द्वारा प्रदर्शित उपलब्धियों एवं प्रदर्शनों को गहराई से अवलोकन कर अभिलेख करना व आकलन में इसको उचित स्थान देना। हारने वाले विद्यार्थियों या औसत प्रदर्शन करने वाले विद्यार्थियों द्वारा प्रदर्शित सकारात्मक व्यवहार को भी आकलन के लिए महत्वपूर्ण मानना चाहिए।

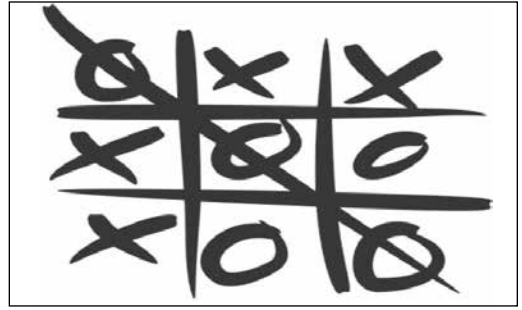
कुछ प्रमुख गणितीय खेल

टिक-टक-टोई बहुविकल्पी (Tic-Tac-Toe)

यह दो खिलाड़ियों, X और O के लिए एक पेपर और पेंसिल गेम है, जिसमें 3×3 ग्रिड में रिक्त स्थान को चिह्नित करते हैं। जो खिलाड़ी क्षैतिज, ऊर्ध्वाधर या विकर्ण पंक्ति में अपने तीन अंक रखने में सफल होता है, वह खेल जीतता है।

खेल के लिए आवश्यक कौशल

खेल के लिए आवश्यक कौशलों, जैसे— रणनीति, अवलोकन एवं तर्क का समुचित प्रयोग करना ज़रूरी है। इस खेल को कभी-कभी कक्षा के वातावरण को हलका करने एवं विद्यार्थियों को तरोताजा करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। शिक्षक इस बॉक्स को ब्लैकबोर्ड पर बनाकर, विद्यार्थियों से एक-एक कर रिक्त स्थान में भरने के लिए पूछ सकता है। इस प्रकार विद्यार्थियों में सोचने एवं तर्क कौशल का विकास खेल-खेल के माध्यम से कराया जा सकता है तथा



चित्र 13

कभी-कभी इस खेल को मनोरंजन के लिहाज से पूरी कक्षा को दो समूहों में बाँटकर खिलाया जा सकता है।

सुडोकु (Sudoku)

सुडोकु एक खेल है, जो वर्ग पहेली या शतरंज पहेलियों की तरह होता है। एक शाब्दिक वर्ग पहेली की तरह इसमें एक वर्ग के अंदर 9×9 खाने बने होते हैं। सुडोकु का लक्ष्य अंकों के साथ 9×9 ग्रिड भरना है; ताकि प्रत्येक कॉलम पंक्ति और 3×3 खंड में 1 से 9 के बीच की संख्या हो। खेल की शुरुआत में, 9×9 ग्रिड में कुछ वर्गों में संख्या भरी होती है। खेलने वाला रिक्त स्थानों को उचित संख्या से भरने और ग्रिड को पूरा करने के लिए तर्क का उपयोग

5	3			7				
6			1	9	5			
	9	8					6	
8				6				3
4			8		3			1
7				2				6
	6					2	8	
			4	1	9			5
				8			7	9

करता है। परंतु शर्त यह है कि किसी भी पंक्ति (क्षैतिज) में 1 से 9 तक कि कोई भी संख्या दो बार न आए। किसी भी पंक्ति (ऊर्ध्वाधर) में 1 से 9 तक कि कोई भी संख्या दो बार न आए।

खेल के लिए आवश्यक कौशल

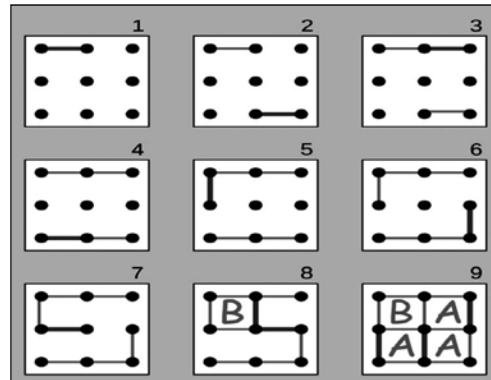
रणनीति, संख्याओं को तार्किक स्थान पर रखना, गणना करना, एकाग्रता बनाना, तर्क करना।

कक्षा में उपयोग

यह खेल अधिक संज्ञानात्मक स्तर का है, इसलिए इसमें विद्यार्थियों के साथ-साथ शिक्षक की भी पूरी भागीदारी होती है। इस खेल को शुरू करने से पहले शिक्षक द्वारा पूरी कक्षा को दो अलग-अलग समूहों में बाँट लेना चाहिए, जैसे— समूह अ और समूह ब तत्पश्चात् इस सुडोकु बॉक्स को ब्लैकबोर्ड पर बना लेना चाहिए तथा दोनों समूहों से एक-एक करके उत्तर लेना चाहिए। जिस समूह के उत्तर ज़्यादा सही हों, उसको विजयी बनाना चाहिए। इससे विद्यार्थियों में सामूहिक रूप से उत्तर देने एवं गणना करने के कौशल में ग़ज़ब का विकास हो सकता है एवं साथ-ही-साथ संख्याओं के तार्किक जोड़ एवं घटाने का कौशल भी विकसित किया जा सकता है।

डॉट्स और बॉक्सेस (Dots and Boxes)

यह दो खिलाड़ियों के लिए एक पेंसिल और पेपर गेम है (कभी-कभी दो से अधिक खिलाड़ी भी हो सकते हैं)। इस खेल में खिलाड़ियों को ग्रिड पर डॉट्स के बीच रेखा खींचने में बदला जाता है। सबसे ज़्यादा बॉक्स बनाने वाला खिलाड़ी, जीतने



वाला खिलाड़ी होता है। खेल को एक आयताकार बिंदु से शुरू किया जाता है। दो खिलाड़ियों में से कोई एक खेल की शुरुआत करता है और दो बिंदुओं के बीच एक-एक क्षैतिज या ऊर्ध्वाधर लाइन के साथ दो बिंदुओं को जोड़ता है। यदि कोई खिलाड़ी बॉक्स के चौथे पक्ष को पूरा करता है तो वह उस बॉक्स को जीत लेता है।

खेल के लिए आवश्यक कौशल

संख्यात्मक और स्थानिक संरचनाओं का समन्वयन करना, अनुक्रम पद के स्थानिक विन्यास के बारे में सोचना, अमूर्त तर्क, चिंतन करना।

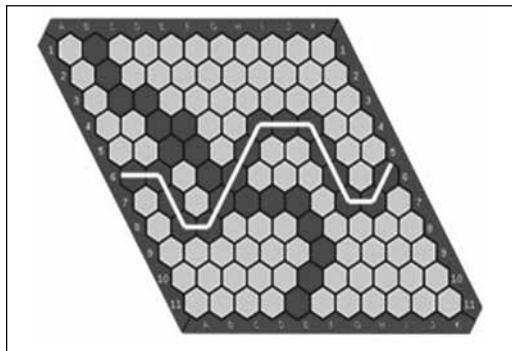
कक्षा में उपयोग

इस खेल में दो या दो से अधिक विद्यार्थियों को एक साथ खिलाया जा सकता है। इस खेल का उपयोग कक्षा में तभी करना चाहिए, जब विद्यार्थियों में अनुक्रम-पद के स्थानिक विन्यास के बारे में सोचना, अमूर्त तर्क, चिंतन जैसे कौशलों का विकास करना हो। खेल के शुरुआत में शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों को समूहों में बाँट लेना चाहिए एवं प्रत्येक समूह में एक बच्चे को मूल्यांकन के लिए रखना चाहिए,

जिससे मूल्यांकन भी सही हो और खेलने वालों के साथ-साथ उस विद्यार्थी का भी विकास हो, जो मूल्यांकन कर रहा है। वह विद्यार्थी भी लगातार खेल के हर चरण को ध्यान से देखेगा और प्रत्येक चरण में अपना तर्क भी लगाएगा। क्योंकि किसी भी खेल को देखते समय कोई भी व्यक्ति सिर्फ़ देखता ही नहीं, बल्कि उसमें मानसिक रूप से स्वयं भी शामिल रहता है।

हेक्स (Hex)

हेक्स दो खिलाड़ियों द्वारा हेक्सागोनल ग्रिड पर खेला जाने वाला एक रणनीति बोर्ड गेम है। इस खेल में दो रंगों का प्रयोग होता है। प्रत्येक खिलाड़ी को बोर्ड के दो आमने-सामने के किनारे दिए जाते हैं। जिसमें अपने रंग की गोटियाँ कुछ इस तरह से भरते हैं कि वे एक सतत रेखा बनाते हुए एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ पहुँच जाते हैं और जो खिलाड़ी पहले ऐसा कर लेता है, वह खेल जीत जाता है।



खेल के लिए आवश्यक कौशल

सतत रेखा बनाना आना, आकृतियों का उपयोग करना आना, संरचनात्मक समझ/ बढ़ते हुए पैटर्नों को समझना।

कक्षा में उपयोग

हेक्स दो विद्यार्थियों द्वारा एक साथ खेलने वाला खेल है, जिसमें विभिन्न गणितीय कौशलों का विकास किया जा सकता है। इसमें विद्यार्थियों को दो-दो के अलग-अलग समूहों में बाँटकर खिलाया जा सकता है। जब ज्यामितीय एवं अन्य ऐसे पाठ जहाँ संरचनात्मक एवं बढ़ते हुए पैटर्नों को समझना पड़े तो ऐसे पाठों को शुरू करने से पहले इस खेल का प्रयोग किया जा सकता है।

कुछ प्रमुख गणितीय सॉफ़्टवेयर

मैथ फ़ॉर चाइल्ड (Math for Child)

मैथ फ़ॉर चाइल्ड सभी उम्र के विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क सॉफ़्टवेयर, विंडोज़, आईओएस (Windows, iOS) के लिए डिज़ाइन किया गया है। इसके उपयोग से विद्यार्थियों को जोड़, घटाव, विभाजन और गुणा सहित बुनियादी गणित सीखने के साथ गणितीय समझ विकसित करने में भी मदद मिलती है। इसमें विभिन्न कठिन स्तर हैं जिनका प्रयोग अंकगणित कौशल को सुधारने के लिए किया जा सकता है।

कैलकुलेटर फ़ॉर किड्स (Calculator for Kids)

यह विद्यार्थियों के लिए एक बुनियादी गणित कैलकुलेटर की तरह है। यह कैलकुलेटर सॉफ़्टवेयर पूरी तरह से मुफ़्त है तथा विद्यार्थियों को बुनियादी गणित और सरल गणित कार्यों पर एक मज़बूत पकड़ विकसित करने में मदद करता है। यह एक पोर्टेबल ऐप है, जिसका उपयोग गणित सीखने के लिए मीडिया स्टोरेज डिवाइस में किया जा सकता है। कुछ

अन्य प्रमुख गणितीय सॉफ्टवेयर जिनके उपयोग से विद्यार्थियों में गणित की समझ एवं गणित के प्रति रुझान पैदा किया जा सकता है—

- माइक्रोसॉफ्ट मैथमेटिक्स (Microsoft Mathematics)
- मैथ एडिटर (Math Editor)
- फोटोमैथ (Photo Math)
- फ्री यूनिवर्सल अलजेब्रा इक्वेशन सॉल्वर (Free Universal Algebra Equation Solver)
- मक्सिमा (Maxima)
- जिओजेब्रा (Geogebra)
- मैथ प्रैक्टिस (Math Practice)

निष्कर्ष

गणितीय ज्ञान, तर्क एवं कई गणितीय कौशल लगभग सारे खेलों में होते हैं। जिनमें कहीं-न-कहीं गणितीय या संख्यात्मक ज्ञान छुपा ही होता है। क्योंकि बिना गणितीय सहायता के हम किसी भी खेल की कल्पना नहीं कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर शतरंज, लूडो, साँप-सीढ़ी आदि शामिल हैं। विद्यालयी शिक्षा में गणित शिक्षण हमेशा ही एक चुनौतीपूर्ण कार्य रहा है। गणित शिक्षण हमेशा शिक्षकों के सामने एक चुनौती पेश करता रहा है कि कैसे इसे सरल-से-सरल तरीके से पढ़ाया जाए और विद्यार्थियों के स्तर पर पहुँचकर, उन्हें सिखाया जाए। विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान को कक्षा में सिखाए जाने वाले गणित के ज्ञान से जोड़ना, एक शिक्षक के लिए बेहद चुनौतीपूर्ण कार्य माना जाता है। इसलिए गणित शिक्षण को रुचिपूर्ण एवं सरल बनाना, शिक्षक के सामने सबसे बड़ी चुनौती के रूप में आता है। हम सभी जानते हैं कि विद्यार्थियों को

खेल-खेलना पसंद है, लेकिन हम खेल की इस रुचि को गणित सीखने के अनुभवों में कैसे बदल सकते हैं? एक अच्छे गणित के खेल के गुण क्या हैं और क्या हमें सामान्य गतिविधि की बजाय नियमित कार्यों और होमवर्क में खेलों को शामिल करना चाहिए? स्कूल में खेल-खेलने का लाभ घर पर भी होता है। इसी तरह विद्यार्थियों को प्रेरित किया जाता है कि वे गणित के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करें।

गणित शिक्षक को इस बिंदु पर विस्तार से विमर्श करना आवश्यक है कि गणित विषय में ज्ञान निर्माण के तौर-तरीके बाकी विषयों से भिन्न हैं एवं जटिल भी हैं जो सिर्फ रटने मात्र से ही नहीं हो पाता। उसमें संज्ञानात्मकता के स्तर पर उचित तर्क एवं क्रमबद्धता का अनुसरण करते हुए प्रत्येक चरणों को धीरे-धीरे समझना पड़ता है और यह विशेषता खेल पद्धति से बिलकुल मिलती-जुलती है। किसी भी खेल को देखें हर खेल की अपनी एक विशेषता होती है तथा हर स्तर में धीरे-धीरे बढ़ने की विशेषता समाहित होती है। जैसे-जैसे खेल आगे बढ़ता है, प्रत्येक चरण में अलग-अलग नियम एवं गणितीय जोड़ व घटाव का उपयोग समाहित रहता है। ठीक इसी तरह गणित में भी संरचनाएँ व्यवस्थित रहती हैं। जिसमें विद्यार्थी धीरे-धीरे उचित तरीके से अपनी बुद्धि का इस्तेमाल करते हुए गणित के सवालों को हल करते हैं एवं गणित की बारीकियों को सीखते हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि गणित एवं खेल में बहुत ही समानताएँ हैं और गणित को खेल विधि से सिखाया जाए तो गणित शिक्षण प्रभावी हो सकता है।

संदर्भ

- उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद्. 2013. आओ सीखें अंकगणित, कक्षा 6. उत्तर प्रदेश.
- . 2013. आओ सीखें अंकगणित, कक्षा 7. उत्तर प्रदेश.
- . 2013. आओ सीखें अंकगणित, कक्षा 8. उत्तर प्रदेश.
- . 2013. आओ सीखें बीजगणित तथा रेखागणित, कक्षा 6. उत्तर प्रदेश.
- . 2013. आओ सीखें बीजगणित तथा रेखागणित, कक्षा 7. उत्तर प्रदेश.
- . 2013. आओ सीखें बीजगणित तथा रेखागणित, कक्षा 8. उत्तर प्रदेश.
- चौरसिया, पी. गोस्वामी, ए. 2015. कंटेंट एनालिसिस ऑफ मैथेमैटिक्स टेक्स्टबुक ऑफ बेसिक शिक्षा परिषद् उत्तर प्रदेश बोर्ड. इंडियन जर्नल ऑफ एक्सपेरिमेंटेशन एंड इन्नोवेशन इन एजुकेशन. वॉल्यूम-IV, अंक – VI.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.
- . 2006. गणित शिक्षण राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.
- . 2013. मैथ मैजिक, कक्षा 6. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.
- . 2013. मैथ मैजिक, कक्षा 5. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
- <https://en.wikipedia.org/wiki/Tic-tac-toe>.
- https://en.wikipedia.org/wiki/Dots_and_Boxes.
- <https://images.theconversation.com/files/82861/original/image-20150525-32575-5qxcow.jpg?ixlib=rb-1.1.0&q=45&auto=format&w=754&fit=clip>.
- <https://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/f/ff/Sudoku-by-L2G-20050714svg>.

चंडीगढ़ के शहरी गरीब बच्चों द्वारा विद्यालय छोड़ने के कारणों का अध्ययन

गुरु त्रिशु सिंह*
सतविंदरपाल कौर**

शिक्षा मानव जीवन का आधार है। आज वैश्वीकरण के युग में जहाँ संसार नज़दीक आता जा रहा है, वहीं मनुष्य के संदर्भ में समस्याएँ भी विकराल रूप धारण कर रही हैं। शिक्षा जहाँ मानव का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक रूप से उत्थान करती है, वहीं किसी भी राष्ट्र के निर्माण में भी अहम भूमिका निभाती है। शिक्षा को सार्वभौमिक करने के लिए भारत सरकार द्वारा विभिन्न नीतियों और कार्यक्रमों को लागू किया गया। लेकिन यह अभी भी एक चिंता का विषय बना हुआ है कि सरकार आज़ादी के 70 वर्षों के बाद भी शिक्षा की सार्वभौमिक दर को प्राप्त करने में नाकाम रही है। इसमें कोई दो राय नहीं कि विद्यालयों में प्रारंभिक स्तर पर विद्यार्थी की नामांकन दर में वृद्धि हुई है। लेकिन जैसे-जैसे कक्षा का स्तर बढ़ रहा है, उसी के साथ-साथ उनके द्वारा विद्यालय छोड़ने की वृद्धि दर भी बढ़ रही है। सरकारों द्वारा अथक प्रयासों से बच्चों को विद्यालय में जाने का अवसर तो मिल रहा है, लेकिन विद्यालयी शिक्षा पूरी करना अभी भी एक चुनौती है। यह कहीं-न-कहीं हमारी नीतियों या सामाजिक व्यवस्था में त्रुटियाँ हैं जो इन बच्चों को शिक्षा पूरी करने में बाधा बनती हैं। इस शोध पत्र में बच्चों को विद्यालय छोड़ने के लिए मजबूर करने वाले कारणों पर प्रकाश डाला गया है। यह शोध सर्वेक्षण विधि पर आधारित है, जिसमें चंडीगढ़ के स्लम इलाकों से आँकड़े एकत्रित किए गए हैं। अध्ययन में मुख्य रूप से तीन कारणों का पता चल पाया है। जिसमें प्रमुख रूप से परिवार, समाज व विद्यालय संबंधी कारण हैं, जो विद्यार्थियों को विद्यालय छोड़ने पर मजबूर करते हैं। इसके अतिरिक्त गरीबी, शादी, माता-पिता की अज्ञानता, घर का माहौल, रोज़गार, विस्थापित करना, पढ़ाने का अच्छा तरीका नहीं होना व पाठ्यक्रम रोचक न होना इत्यादि कारण विद्यार्थियों को विद्यालय छोड़ने पर मजबूर करते हैं।

पृष्ठभूमि

वर्तमान समय में शिक्षा, व्यक्तियों के व्यक्तिगत उत्थान, बाधाओं को दूर करने और इस प्रक्रिया में, उनके मौजूद अवसरों और भलाई में निरंतर सुधार के लिए उपलब्ध विकल्पों का विस्तार करने के लिए एकमात्र सबसे महत्वपूर्ण साधन है। यह केवल मानव

पूँजी, उत्पादकता और श्रम का मुआवज़ा बढ़ाने का एक साधन नहीं है, बल्कि जानकारी, ज्ञान के अधिग्रहण, आत्मसात् और संचार की प्रक्रिया को सक्षम करने के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है, जो सभी व्यक्तियों की गुणवत्ता को बढ़ाता है। शिक्षा केवल दूसरे सिरो के साधन के रूप में महत्वपूर्ण नहीं है,

* शोधार्थी, शिक्षा विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, पंजाब-160014

** सह-प्रोफ़ेसर, शिक्षा विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, पंजाब-160014

लेकिन यह एक विशेषता है जो अपने आप में महत्वपूर्ण है। शिक्षा और उपलब्धियों की प्रक्रिया का जीवन के सभी पहलुओं पर प्रभाव पड़ता है। यह सामुदायिक जीवन में ज्ञान, संचार और भागीदारी प्राप्त करने की क्षमता को प्रदान करती है। यह एक व्यक्ति की और यहाँ तक कि समुदाय की सामूहिक धारणाओं, आकांक्षाओं, लक्ष्यों और साथ ही क्षमता और उन्हें प्राप्त करने के साधनों को बदलती है। असमानता पर काबू पाने और एक समतावादी समाज में आने की इस प्रक्रिया में शिक्षा को एक प्रभावी साधन के रूप में देखा जाता है।

भारत में, स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद, सभी को शिक्षा उपलब्ध कराना भारत सरकार की प्राथमिकता बन गई। इसलिए भारत सरकार द्वारा भारतीय संविधान में शिक्षा संबंधी विभिन्न प्रावधान किए गए और विभिन्न आयोगों और समितियों का गठन किया गया तथा अनेक योजनाएँ चलाई गईं। इसके साथ-साथ सभी नीतियों और कार्यक्रमों को पिछले समय में भारत सरकार द्वारा सभी के लिए शिक्षा के लक्ष्य (Education For All—EFA) को प्राप्त करने के लिए शुरू किया गया। जिसके लिए कई तरह के प्रयास किए गए। जिनमें 'सर्व शिक्षा अभियान' प्रारंभिक शिक्षा की एक बहुत बड़ी योजना थी। जिसमें शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 मील का पत्थर साबित हुआ।

लेकिन जब हम ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में शिक्षा की स्थिति देखते हैं तो हम यह देख सकते हैं कि शहरी क्षेत्रों में, गरीबी और अमीरी के बीच का अंतर बहुत स्पष्ट है। यह ध्यान देने की जरूरत है कि पिछले 70 वर्षों के दौरान आर्थिक और औद्योगिक प्रगति ने

अमीरों और गरीबों के बीच बहुत अधिक ध्रुवीकरण किया। शहरों और शहरी विकास ने इस प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सोरोकिन कहते हैं, "समाज में जहाँ विद्यालय सभी सदस्यों के लिए सुलभ हैं, विद्यालय व्यवस्था एक सामाजिक उन्नयन का प्रतिनिधित्व करती है जो एक समाज के बहुत नीचे से चलती है।" लेकिन भारतीय शहरी संदर्भ में, शिक्षा प्रणाली स्वयं समाज का एकीकरण करने के बजाय सामाजिक-आर्थिक रूप में विभाजित करने की अपराधी बन गई है। स्लम बस्तियाँ समाज में इस प्रभाग का उत्पाद हैं (गोविंदा, 1995)। स्लम बस्तियाँ एक सार्वभौमिक घटना हैं। और दुनिया भर के लगभग सभी शहरों में व्यावहारिक रूप से मौजूद हैं। यह माना जाता है कि जब से लोग शहरी समुदायों में रहने लगे, शायद तब से ही यह बस्तियाँ अस्तित्व में थीं।

2011 की जनगणना के अनुसार, भारत की कुल शहरी जनसंख्या 377 मिलियन है, जिसमें से 93.06 मिलियन जनसंख्या स्लम में रहती है। भारत की शहरी जनसंख्या की 21.5 प्रतिशत जनसंख्या इस वर्ग में रहती है। 46 मिलियन शहरी जनसंख्या में 2,50,99,576 जनसंख्या स्लम की दर्ज की गई है। इसका यह अभिप्राय है कि शहर में पाँचवाँ तथा भारत में हर बीसवाँ व्यक्ति इस वर्ग से संबंध रखता है।

चंडीगढ़ की 97.2 प्रतिशत जनसंख्या शहरों में रहती है, इसकी कुल शहरी आबादी 1,026,459 है। अगर हम स्लम की बात करें तो कुल शहरी आबादी का यह 9.3 प्रतिशत हिस्सा समेटे

सारणी 1 — भारत और चंडीगढ़ में स्लम जनसंख्या

स्थान	कुल शहरी जनसंख्या	कुल स्लम जनसंख्या	शहरी जनसंख्या में स्लम जनसंख्या का प्रतिशत
भारत	377,106,125	6,54,94,604	17.4
चंडीगढ़	1,026,459	95,135	9.3

स्रोत – भारत की जनगणना, 2011

हुए है। स्लम में रहने वाले लोग/वर्ग अभी भी अपनी आधारभूत सुविधा एवं शिक्षा के लिए संघर्षरत हैं। शिक्षा हर इनसान के लिए एक बुनियादी अधिकार है, लेकिन दुर्भाग्य से बहुत कम स्लम निवासियों को यह अधिकार मिल पाया है। स्लम बस्तियों में साक्षरता दर बहुत कम है, खासकर महिलाओं को पुरुषों से कम अवसर मिलते हैं। यह स्थिति दुनिया की सभी बस्तियों में समान नहीं है, लेकिन विकासशील देशों में इस असमानता को अधिक देखा गया है।

भारत में शिक्षा पर बड़ी संख्या में शोध अध्ययनों के बावजूद, शहरी स्लम इलाकों के बच्चों की शिक्षा पर पर्याप्त रूप से शोध नहीं किए गए हैं और शिक्षा शोधों में शहरी क्षेत्र के भीतर उच्च स्तर की असमानताओं पर ध्यान नहीं दिया गया है। हैरानी की बात है कि शिक्षा के नीतिगत दस्तावेजों में इन वर्गों की शिक्षा की समस्याओं का उल्लेख नगण्य है (गोविंदा, 2002)।

शहरी क्षेत्रों में स्कूली शिक्षा की उपलब्धता बढ़ाने के लिए पहल की स्पष्ट कमी है। ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालयों की वृद्धि के साथ-साथ नामांकन में भी वृद्धि हो रही है, शहरी इलाकों की तुलना में ग्रामीण इलाकों में प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक वर्गों में नामांकन काफी अधिक रहा है। शहरी केंद्रों की तेजी से वृद्धि से यह पता चलता है कि क्या शहरों में शैक्षिक (और अन्य आवश्यक) सुविधाओं में समानांतर वृद्धि या गिरावट आई है या नहीं और यदि हाँ, तो किस हद तक? (पब्लिक रिपोर्ट ऑन बेसिक एजुकेशन इन इंडिया, 1997)

सभी बातों को ध्यान में रखते हुए हमें उन बच्चों की शिक्षा को भी ध्यान में रखना चाहिए, जो शहरी एवं औद्योगिक विकास में अपना योगदान दे रहे हैं। ये बच्चे शहर, राज्य व देश की आर्थिक उन्नति में अपना भरपूर योगदान दे रहे हैं। परंतु त्रासदी यह है कि कोई भी इनकी तरफ ध्यान नहीं दे पा रहा है। इन बच्चों को एक तरह से अनदेखा किया जा रहा है।

सारणी 2 — भारत और चंडीगढ़ में साक्षरता दर (प्रतिशत में)

स्थान	कुल साक्षरता दर	शहरी साक्षरता दर	स्लम साक्षरता दर
भारत	73.0	84.1	77.7
चंडीगढ़	86.4	86.2	66.4

स्रोत – भारत की जनगणना, 2011

सारणी 2 में हम देख सकते हैं कि चंडीगढ़ की स्लम बस्तियों की साक्षरता दर 66.4 है जो कि भारत की स्लम साक्षरता दर 77.7 से कम है। हाल ही में राष्ट्रीय उपलब्धि सर्वेक्षण (2017) की रिपोर्ट में चंडीगढ़ की शिक्षा को बाकी संघ शासित राज्यों के मुकाबले बेहतर शिक्षा प्रदान करने के लिए सराहा गया है। अग्रवाल और चुघ (2003) के अनुसार, पिछड़े इलाकों के बच्चों के सामने प्राकृतिक बाधाएँ, जैसे— पहाड़, प्रतिकूल वातावरण आदि समस्या होती हैं। लेकिन स्लम में रहने वाले बच्चों के आगे व्यस्त सड़कें व रेलवे क्रॉसिंग इत्यादि कई घटक इनकी शिक्षा में रुकावट पैदा करते हैं। वास्तव में, यह आपूर्ति की तरफ से दिक्कत है। आठवाँ अखिल भारतीय विद्यालय शैक्षिक सर्वेक्षण की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में शहरी स्लम में 26,652 विद्यालय हैं। जिसमें से 12,681 प्राथमिक, 7488 उच्च प्राथमिक, 4093 माध्यमिक व 2450 उच्चतर माध्यमिक हैं।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि भारत सरकार द्वारा बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के लिए कई ठोस कदम उठाए गए हैं। जिनमें भारतीय शिक्षा प्रणाली में शिक्षा का अधिकार अधिनियम — 2009 मील का पत्थर साबित हुआ। 2010 में लागू हुए अधिनियम के अथक प्रयासों का एक लाभ तो यह मिला कि हमने नामांकन दर में वृद्धि की तथा सार्वभौमिक दर को

काफ़ी हद तक प्राप्त भी कर लिया। यह हमारे देश की शिक्षा के लिए अच्छा संकेत है। सारणी 3 में (District Information System for Education —DISE) की रिपोर्ट के अनुसार, साल 2014–15 व 2015–16 में नामांकन अनुपात में पिछले वर्षों के मुकाबले वृद्धि तो हुई है जो कि किसी भी समाज के लिए अच्छा संकेत है। लेकिन इसके साथ-साथ विद्यालय छोड़ने का सिलसिला भी बरकरार है, जो कि एक चिंता का विषय है। अगर हम इन दोनों वर्षों के नामांकन अनुपात की दर पर दृष्टि डालें तो यह कहीं-न-कहीं कम हुई है जो कि एक चिंता का विषय है। लेकिन ये कहीं-न-कहीं राहत की बात भी है कि पिछले वर्षों के मुकाबले इसमें वृद्धि हुई है। नामांकन अनुपात में वृद्धि इस बात का प्रमाण नहीं है कि बच्चों की शिक्षा निरंतर चल रही है। ‘सर्व शिक्षा अभियान’ जैसे अनेक प्रयासों से स्कूलों की आधारभूत संरचना में तो वृद्धि हुई, लेकिन यह वृद्धि कहीं भी घरों या सामाजिक समस्याओं के साथ कोई खास संबंध नहीं रखती। यह कहीं-न-कहीं हमारी सरकारों तथा अलग-अलग कमेटियों व रिपोर्ट में कमी रही है कि वह इन बच्चों के विद्यालय छोड़ने के कारणों का पता लगाने में नाकाम रही है। प्राथमिक स्तर पर तो इन बच्चों के विद्यालय शिक्षा प्राप्त करने में वृद्धि हुई, लेकिन साथ-साथ उच्च स्तर पर विद्यालय छोड़ने की दर भी बरकरार है।

सारणी 3 — भारत और चंडीगढ़ में शुद्ध नामांकन अनुपात और विद्यालय छोड़ने की दर

स्थान	प्राथमिक स्तर		उच्च प्राथमिक स्तर	
	शुद्ध नामांकन अनुपात		विद्यालय छोड़ने की दर	
	2014–15	2015–16	2014–15	2015–16
भारत	87.41	87.30	3.77	4.03
चंडीगढ़	74.93	72.23	1.08	0.44

स्रोत— डायस की रिपोर्ट 2014–15, 2015–16

डायस की रिपोर्ट 2014–15, 2015–16 को अगर हम ध्यान में रखें तो इसमें हम देखते हैं कि बेशक विद्यालय छोड़ने की दर थोड़ी कम हुई है, लेकिन यह अभी भी बरकरार है। चंडीगढ़ में साल 2014–15 में यह 1.08 थी जो कि 2015–16 में कम होकर 0.44 हो गई। लेकिन विद्यालय छोड़ने की दर का कम होना यह नहीं दर्शाता कि बच्चे विद्यालय शिक्षा नहीं छोड़ रहे हैं। एक तरफ तो सरकार की नीतियाँ सार्वभौमिक दर की ओर अग्रसर होने की कोशिश कर रही हैं, लेकिन दूसरी ओर विद्यालय छोड़ने की परंपरा भी अपनी यथास्थिति बनाए हुए है। भले ही यह दर चंडीगढ़ में कम हो गई है। लेकिन अगर हम भारत को ध्यान में रखकर देखें तो विद्यालय छोड़ने की दर बढ़ रही है जो कि भारतीय शिक्षा प्रणाली, नीतियों व नीतिकारों पर एक प्रश्न चिह्न लगा रही है।

इंडियन एक्सक्लूशन रिपोर्ट 2013–14 के अनुसार, चंडीगढ़ में 2012–13 में नामांकन अनुपात में प्राथमिक से उच्च प्राथमिक में 35.7 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गई है। सामाजिक एवं ग्रामीण शोध संस्थान (2014) के अनुसार, भारत में लगभग छह मिलियन (2.97%) बच्चे 6–13 आयु वर्ग के विद्यालयों से बाहर हैं। यह संख्या पुरुषों (2.77%) के मुकाबले स्त्रियों (3.23%) में ज्यादा पाई गई है। जनगणना 2011 के अनुसार, 23.1 प्रतिशत (22.72 मिलियन) शहरी बच्चों 5–18 वर्ग के विद्यालयों से बाहर हैं। इनमें से 9.1 प्रतिशत बच्चों ने अपनी विद्यालयी शिक्षा छोड़ दी तथा 13.93 प्रतिशत (13.75 मिलियन) बच्चे ऐसे हैं जो कभी विद्यालय ही नहीं गए। स्टेट्स ऑफ़ चिल्ड्रन इन अर्बन एजुकेशन रिपोर्ट (2016) के अनुसार,

स्लम के कुल रहने वाले बच्चों में 2.14 प्रतिशत बच्चे विद्यालयों से बाहर हैं। 2.14 प्रतिशत लड़कों के मुकाबले 2.70 प्रतिशत लड़कियाँ विद्यालय नहीं जाती हैं। यह भारत की प्रगति के लिए संकट ही है। शिक्षा को सार्वभौमिक लागू करने पर जोर दिया जा रहा है। लेकिन फिर भी बच्चों के विद्यालय छोड़ने का क्रम लगातार जारी है। शायद कहीं-न-कहीं ये बात हमारी नीतियों पर एक प्रश्न चिह्न लगा रही है। इस शोध पत्र में शोधार्थी द्वारा इन बच्चों द्वारा विद्यालय छोड़ने के मुख्य कारणों को खोजने का प्रयास किया गया है। इन कारणों को ढूँढ़ने के लिए शोधार्थी ने चंडीगढ़ शहर का चयन किया।

अब तक के कारणों पर प्रकाश डालते शोध अध्ययन

अब तक के शोध/अनुसंधानों पर नज़र डालें तो समाज के इस वंचित वर्ग के ऊपर बहुत ही कम अध्ययन हो पाए हैं। अब तक जो भी शोध हुए उनके द्वारा शोधार्थी को इस वर्ग को शिक्षा प्राप्त करने में होने वाली बाधाओं के कारण पता चल पाए हैं। अब तक हुए शोध अध्ययनों में से कुछ निम्न हैं —

पटेल (1983) ने अपने शोध अध्ययन में पाया कि स्लम को दी जाने वाली शैक्षिक सुविधाओं की गुणवत्ता गैर-स्लम को दी जाने वाली सुविधाओं से काफी निम्न किस्म की है। अध्यापक द्वारा बच्चों में खास रुचि न दिखाना, घर पर पढ़ने का माहौल न होना, माता-पिता द्वारा कोई रुचि न दिखाना, बच्चों के विद्यालय छोड़ने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। यदुप्पनवार (2002) ने बच्चों के शिक्षा पूरी न करने के कारणों का पता लगाने के लिए डिऊडरग

ब्लॉक में एक शोध अध्ययन किया, उसमें पाया गया कि बच्चों का विद्यालय छोड़ने में गरीबी एक मुख्य कारण है, इसके अतिरिक्त लड़कियों को विद्यालय न भेजना, माता-पिता का शिक्षा के प्रति झुकाव न होना भी अन्य कारण हैं। खोखर, गर्ग और भारती (2005) ने दिल्ली के स्लम बस्तियों के बच्चों में विद्यालयी शिक्षा पूरी न कर पाने के कारणों को पता लगाने पर अध्ययन में पाया गया कि लड़कियाँ, लड़कों के मुकाबले अधिक विद्यालय छोड़ रही हैं। सभी लड़कियाँ उच्च प्राथमिक या प्राथमिक से पहले ही विद्यालय छोड़ चुकी हैं। खास्नाबीस और चटर्जी (2007) ने अपने शोध में बताया कि हालाँकि सर्व शिक्षा अभियान ने सार्वभौमिकता को प्राप्त करने में सफलता तो प्राप्त की है, लेकिन अभी भी अलाभ परिवारों के बच्चे शिक्षा या निरंतर शिक्षा को प्राप्त करने में असफल रहे हैं। सुनाजिता (2009) ने अपने शोध में स्लम में रहने वाले बच्चों की विद्यालयी शिक्षा पूरी न कर पाने के कारणों पर प्रकाश डाला है। इस शोध अध्ययन में पाया गया कि घर की आर्थिक स्थिति, माता-पिता की शिक्षा का बच्चों की शिक्षा पर प्रभाव पड़ता है। प्लान इंडिया (2009) ने 6-14 वर्षों के बच्चों के विद्यालय छोड़ने के मुख्य कारणों का पता लगाया, वे हैं— शिक्षा का प्रतिकूल वातावरण, सज़ा, विद्यालय की दूरी, मनोरंजन और खेल की असुविधा व काम का बोझ, घर का काम, भाई-बहन का ध्यान रखना व पशुओं को चराना इत्यादि। इसके अतिरिक्त पढ़ाई का असुरक्षित माहौल, घर व विद्यालय में परिवार द्वारा कोई सहयोग नहीं। गोबिन्दराजु और वेंकटेशन (2010) ने अपने शोध में पाया कि कम रुचि व परिवार के सदस्यों द्वारा

ध्यान न देना, घर पर बच्चों का खयाल न रखना, माता-पिता का निरक्षर होना, घर पर किसी की जल्दी मृत्यु व किसी सदस्य का बीमार होना व घरवालों के रोज़गार में मदद करना, बच्चों के विद्यालयी शिक्षा छोड़ने के मुख्य कारण हैं। चुघ (2011) ने दिल्ली में स्लम बस्तियों के बच्चों के विद्यालय छोड़ने के मुख्य कारणों का पता लगाने के लिए अध्ययन किया जिसमें पाया गया कि आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवारों में विद्यालय छोड़ने की प्रवृत्ति अधिक देखी गई है। जिनमें अन्य हैं, शिक्षा का खर्च न उठा पाना, विद्यालय की कमज़ोर आधारभूत संरचना, शिक्षकों द्वारा प्रोत्साहित न करना, अच्छी सेहत व खाना इत्यादि। नाथ, मैटी और हेल्डर (2013) ने कलकत्ता में स्लम के बच्चों की शिक्षा पर जिन कारणों का प्रभाव पड़ता है, उनका पता लगाया। उनके न्यादर्श में शामिल 24.17 प्रतिशत बच्चे विद्यालय छोड़ चुके थे। उनके कारणों में पाया गया कि विस्थापन, स्वास्थ्य, माता-पिता का व्यवसाय, उनकी शिक्षा, घर या रहने का माहौल व विद्यालय की आधारभूत संरचना बच्चों की शिक्षा पर सीधा प्रभाव डालते हैं। मोहंती (2014) के अनुसार, विद्यालय छोड़ने के मुख्य कारणों में शामिल है कि माता-पिता बच्चों को शिक्षा देना ही नहीं चाहते, विद्यालय छोड़ने की प्रवृत्ति ज़्यादातर लड़कियों में देखने को मिलती है। न्यादर्श में शामिल बच्चों में 35 प्रतिशत बच्चे गरीबी व 35 प्रतिशत बच्चे विद्यालय संबंधी कारणों से या तो विद्यालय छोड़ गए या विद्यालय गए ही नहीं। काले (2017) ने अपनी रिपोर्ट में बच्चों के विद्यालय छोड़ने के मुख्य कारणों में गरीबी व घर का खराब वातावरण को मुख्य कारण बताया। आँकड़ों

के अनुसार 29 प्रतिशत बच्चे आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण विद्यालय छोड़ गए। अधिकतर माता-पिता के अनुसार सातवीं तक पढ़ाई काफ़ी है तथा यह भी देखा गया कि अगर परिवार व समूह में एक बच्चा विद्यालय छोड़ रहा है तो अन्य भी विद्यालय बीच में ही छोड़ देते हैं। कौर (2017) ने चंडीगढ़ के स्लम में रहने वाले बच्चों के विद्यालय छोड़ने के कारणों को पता लगाने के लिए अध्ययन किया। जिसमें उन्होंने दो स्लम बस्तियों में सर्वेक्षण किया तथा पाया कि 16 प्रतिशत बच्चों का विद्यालय छोड़ने का कारण गरीबी था, 59 प्रतिशत बच्चों ने विद्यालय इसलिए छोड़ा था, क्योंकि उनकी कॉलोनियों को विस्थापित किया गया व इसके अतिरिक्त 10 प्रतिशत बच्चों ने अन्य कारणों से विद्यालय छोड़ दिया था।

संक्षेप में, विद्यालय की शिक्षा पूरी न कर पाने या कभी विद्यालय न जाने में कई कारणों को देखा गया तथा अलग-अलग शोधों व शोधार्थियों द्वारा अनेक कारणों का उल्लेख किया गया, जिसमें शामिल हैं, गरीबी (यदुप्पनवार 2002, गोबिन्दराजु और वेंकटेशन 2010, मोहंती 2014), घर का माहौल व घर पर काम (खोखर, गर्ग और भारती 2005, प्लान इंडिया 2009, गोबिन्दराजु और वेंकटेशन 2010) समूह या समाज के दबाव में विद्यालय छोड़ना (काले 2017) व एक अन्य कारण है कॉलोनियों को ध्वस्त करना (कौर 2017)।

इस शोध पत्र में मौजूदा समय में स्लम में रहने वाले बच्चों की विद्यालयी शिक्षा को पूरी न कर पाने के कारणों का पता लगाने के लिए शोधार्थी द्वारा चंडीगढ़ की स्लम बस्तियों में शोध अध्ययन किया

गया। क्योंकि चंडीगढ़ के स्लम बस्तियों की साक्षरता दर भारत के स्लम बस्तियों की साक्षरता दर से बहुत कम है।

शोध प्रारूप व न्यादर्श

इस शोध अध्ययन के लिए शोधार्थी द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। यह शोध चंडीगढ़ के स्लम क्षेत्रों में रहने वाले 53 बच्चों के न्यादर्श पर किया गया। जिसमें इन बच्चों द्वारा विद्यालयी शिक्षा पूरी न कर पाने के कारणों को खोजा गया। विद्यालयी शिक्षा पूरी न कर पाने वाले विद्यार्थी वे हैं जो कम-से-कम एक साल से विद्यालय नहीं जा रहे हैं या जो कभी विद्यालय गए ही नहीं। प्रदत्त एकत्रित करने के लिए साक्षात्कार तकनीक का प्रयोग किया गया। प्रदत्त एकत्रित करने के लिए शोधार्थी ने स्वयं विद्यार्थियों से साक्षात्कार किया। न्यादर्श का विभाजन सारणी 4 में दिया गया है।

सारणी 4 — न्यादर्श का विभाजन

क्र. सं.	विद्यालय छोड़ने का समय	बच्चों की संख्या
1.	कभी विद्यालय गए नहीं	5
2.	कक्ष 2-3 में विद्यालय छोड़ा	8
3.	कक्ष 4-5 में विद्यालय छोड़ा	15
4.	कक्ष 6-8 में विद्यालय छोड़ा	20
5.	कक्ष 8 के बाद विद्यालय छोड़ा	5
	कुल	53

आँकड़ों की चर्चा और व्याख्या

शोधार्थी द्वारा चंडीगढ़ के स्लम में रहने वाले बच्चों के साथ साक्षात्कार कर उनसे विद्यालय छोड़ने के कारणों को जानने का प्रयास किया गया। जिसमें कई कारण ज्ञात हुए, जो इस प्रकार हैं—

सारणी 5 — परिवार संबंधी कारण

क्र.सं.	कारण	लड़के (% में)		लड़कियाँ (% में)
1.	गरीबी	12	22.6	6
2.	भाई-बहनों का ध्यान रखना	0	0	3
3.	शादी-विवाह	2	3.77	4
4.	परिवार के सदस्यों की पढ़ाई में कोई रुचि नहीं	3	5.66	4
5.	माता-पिता का अनपढ़ होना	3	5.66	2
6.	घर पर पढ़ाई का माहौल न होना	2	3.77	2

सारणी 5 दर्शाती है कि लगभग 34 प्रतिशत बच्चों का विद्यालय छोड़ने का मुख्य कारण गरीबी था। यह एक त्रासदी है की स्लम और गरीबी, दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इन आँकड़ों पर नज़र डालें तो 5.66 प्रतिशत बच्चों ने विद्यालय इसलिए छोड़ दिया, क्योंकि वो लड़कियाँ हैं और उन्हें अपने छोटे भाई-बहनों का ध्यान रखना पड़ता है, यह जेंडर भेदभाव बच्चों की शिक्षा में रुकावट पैदा करता है। शोध में पाया गया कि छह बच्चों ने विद्यालय छोड़ने के कारणों में मुख्य कारण शादी को बताया है, जिसमें चार लड़कियाँ तथा दो लड़के थे। चार बच्चों ने विद्यालय इसलिए छोड़ दिया, क्योंकि उनके घर पर पढ़ने का माहौल नहीं होता था व सात बच्चों ने विद्यालय इसलिए छोड़ दिया, क्योंकि उनके माता की शिक्षा में कोई रुचि नहीं थी। जबकि 9.43 प्रतिशत, जिनमें 5.66 प्रतिशत लड़के व 3.77 प्रतिशत लड़कियाँ शामिल हैं, को विद्यालय

इसलिए छोड़ना पड़ा, क्योंकि उनके माता-पिता की पढ़ाई संबंधी अज्ञानता उनकी शिक्षा में बाधा बनी। बच्चों को अच्छी शिक्षा या पढ़ने के लिए अच्छा वातावरण होना ज़रूरी है। लेकिन इस समाज में रहने वाले बच्चों के घर का वातावरण शिक्षा के लिए अनुकूल नहीं होता। कुछ घरों के बड़ों द्वारा घर पर नशे का प्रयोग करके घर के माहौल को खराब किया जाता है, इसी अध्ययन में चार बच्चों ने विद्यालय छोड़ने की बात कही।

सारणी 6 से मुख्य दो कारणों का पता चला है— (1) बेरोज़गारी या रोज़गार पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न होना। (2) कॉलोनियों को नष्ट करना। आज भारत जैसे देश में युवा लोगों के लिए रोज़गार प्राप्त करना एक गहन चिंता का विषय है। सारणी 6 में आँकड़ों पर नज़र डालें तो 7.54 प्रतिशत बच्चे जो कि सभी लड़के हैं, इसलिए विद्यालयी शिक्षा से विमुख हो गए, क्योंकि उन्हें लगा कि पढ़-लिखकर भी कहीं

सारणी 6— समाज संबंधी कारण

कारण	लड़के (% में)		लड़कियाँ (% में)		कुल
पढ़ाई के बाद नौकरी के कम अवसर या नौकरी न मिलना	4	7.54	0	0	7.54
कॉलोनियों को तबाह/नष्ट करना	3	5.66	2	3.77	9.43

कोई पर्याप्त रोजगार नहीं है व पढ़कर वे अपना समय ही बर्बाद करेंगे। आज आधुनिकता के युग में सरकारों द्वारा आधुनिकता पर बल दिया जा रहा है। इसी आधुनिकता को लेकर सरकार द्वारा भारतीय शहरों का आधुनिकीकरण करने के लिए स्मार्ट सिटी प्रोजेक्ट चलाए जा रहे हैं। जिसके अधीन स्लम में रहने वाले लोगों की कॉलोनियों को नष्ट करके उनको आवास प्रदान किए गए। लेकिन इस प्रकार के आधुनिकीकरण ने भी बच्चों की शिक्षा प्राप्त करने में रुकावटें पैदा कर दीं। शोध अध्ययन में 9.43 प्रतिशत बच्चे ऐसे पाए गए, जिनमें 5.66 प्रतिशत लड़के व 3.77 प्रतिशत लड़कियों को विद्यालय, विस्थापन करने के कारण छोड़ना पड़ा और जिस कारण से वे दोबारा से विद्यालय नहीं जा सके।

सारणी 7 में विद्यार्थियों के विद्यालय छोड़ने के विद्यालय से संबंधित कारणों का उल्लेख किया गया है। चार विद्यार्थियों ने यह स्वीकार किया है कि उन्होंने विद्यालय इसलिए छोड़ दिया, क्योंकि उन्हें सज़ा मिलती थी। तीन बच्चों ने इसलिए विद्यालय छोड़ दिया, क्योंकि वे होमवर्क करके नहीं लाते थे और शिक्षक उसे डाँटती/ डाँटते थे और सज़ा भी देते थे। चार विद्यार्थियों ने विद्यालय इसलिए छोड़

दिया, क्योंकि उन्हें शिक्षक ने पढ़ाने में कोई रुचि पैदा नहीं की, शिक्षक के पढ़ाने का तरीका अच्छा नहीं था। दो लड़के व एक लड़की ने इस कारण से विद्यालय छोड़ दिया, क्योंकि उन्हें लगा कि पाठ्यक्रम में कुछ भी रुचिपूर्ण नहीं है।

प्रदत्त एकत्रित करते समय शोधार्थी को छह बच्चे ऐसे मिले जो कभी भी विद्यालय गए ही नहीं। इन सभी बच्चों के विद्यालय न जाने के अलग-अलग कारण थे, जो निम्न प्रकार हैं —

1. “भाई जी। पढ़ाकर क्या करेंगे। हमारी मौसी का लड़का 15 क्लास पढ़ा है लेकिन अभी भी नौकरी नहीं मिली। जब पढ़कर भी यही काम करना है तो क्यों अपना समय खराब करें।”
2. “हमारे घर में चार भाई-बहन हैं और मैं सबसे बड़ी हूँ। मम्मी-डैडी तो काम पर निकल जाते थे, तो घर का काम और भाई लोगों को कौन संभालता? इसलिए कभी विद्यालय का सोचा भी नहीं।”
3. “भैया, घर पर खाने को रोटी नहीं होती। आप पढ़ाई की बात कर रहे हो! हमारे पापा नहीं हैं, अगर हम नहीं कमाएँगे तो घर का गुज़ारा कैसे चले, मम्मी अकेली कितना काम करेंगी।”

सारणी 7 — विद्यालय संबंधी कारण

क्र.सं.	कारक	लड़के (% में)		लड़कियाँ (% में)	
1.	अध्यापक द्वारा सज़ा देना	4	7.54	0	0
2.	घर का काम	2	3.77	1	1.88
3.	शिक्षण विधियों का रोचक न होना	1	1.88	3	5.66
4.	पाठ्यक्रम रोचक नहीं होना	2	3.77	1	1.88

4. “मैं पढ़ना तो चाहता था, लेकिन क्या करें! पापा ने कभी विद्यालय जाने नहीं दिया। न वे खुद पढ़े, न हमें विद्यालय जाने दिया। बोलते थे, पढ़ के कौन-सा तुने लाड साहब बन जाना। बेटा तो एक झुग्गी वाले का ही रहेगा।”
5. “हमारे मम्मी गाँव में रहती हैं, पर हमारे पापा और तीन भाई पिछले दस साल से यहीं रहते हैं। सभी काम पर जाते हैं। मम्मी खुद नहीं आ सकती यहाँ पर तो इसलिए हम जब थोड़े बड़े हुए तो हमें यहीं पर भेज दिया। अब बस घर के काम में ही उलझे रहते हैं।”
6. “हमारी बड़ी बहन जो कि विद्यालय जाती थी उसने शादी किसी दूसरे बिरादरी के लड़के से कर ली। बस इसी डर से हमें पापा ने कभी विद्यालय नहीं भेजा।”

सुझाव

बच्चों के विद्यालय छोड़ने के कारणों पर हमने चर्चा की और शोध में पाया कि मुख्य तीन कारण हैं जो विद्यार्थियों की विद्यालयी शिक्षा को बाधित कर रहे हैं। हम अगर पहले कारण जो कि परिवार से संबंधित है, उस पर नज़र डालें तो उसमें मुख्य रूप से जो कारण निकल कर आया है, वह है गरीबी। गरीबी एक ऐसा कारण है जो 34 प्रतिशत बच्चों की विद्यालय शिक्षा छुड़वाने के लिए जिम्मेदार है। यह भी माना जाता है कि गरीबी और स्लम, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए सरकारों और नीतिकारों द्वारा ऐसी नीतियाँ बनाई जानी चाहिए जो गरीबी को दूर कर सकें। आज गरीबी विश्व के सभी विकासशील देशों के लिए गंभीर चिंता बनी हुई है। मिड-डे-मील जैसे

कार्यक्रमों से विद्यालय में नामांकन दर में या बच्चों को विद्यालय की ओर लाने में सरकार सफल तो हुई है, लेकिन बच्चों की शिक्षा अभी भी दुविधा में है। क्योंकि ये बच्चे परिवार की आजीविका का साधन हैं। मिड-डे-मील से इन बच्चों के भोजन की व्यवस्था तो हो गई, लेकिन परिवार के बाकी सदस्यों के भोजन की सुविधा न होने के कारण ये बच्चे अपनी पढ़ाई छोड़कर काम के लिए बाहर निकल रहे हैं। इसके अतिरिक्त जो परिवार संबंधी कारणों में अन्य बाधक कारण पाए गए, जिसमें शादी, माता-पिता का अनपढ़ होना, पढ़ने का माहौल न होना इत्यादि, ये सभी कारण कहीं-न-कहीं गरीबी से संबंधित हैं। इसलिए सबसे पहले ‘गरीबी हटाओ’ कार्यक्रमों पर जोर देना चाहिए।

इसके बाद जो अन्य मुख्य कारण जो समाज संबंधी निकल कर आए थे, वो हैं बेरोज़गारी व कॉलोनियों को नष्ट करना। आज भारत में युवाओं की जनसंख्या के कारण विश्व में ‘युवा देश’ का दर्जा मिलता है। लेकिन भारत के युवा आज भी अपने भविष्य को लेकर चिंतित हैं। सरकारों के प्रयासों से बच्चे शिक्षा तो प्राप्त कर लेते हैं, लेकिन शिक्षा प्राप्त करने के बाद बच्चों के पास सिर्फ निराशा हाथ लग रही है। आज भारत में शिक्षित बेरोज़गारी अपनी चरम सीमा पर है। जिस कारण कई बच्चे शिक्षा प्राप्त करना ही नहीं चाहते। सरकारों व नीतिकारों को चाहिए कि वह इन बच्चों के लिए रोज़गार के अवसर पैदा करें ताकि बच्चों की शिक्षा में रुचि पैदा हो व बच्चे शिक्षा प्राप्त करने के लिए उत्सुक हों। इसके अतिरिक्त बच्चों की शिक्षा में तकनीकी शिक्षा के

ऊपर जोर देना चाहिए ताकि वह स्कूली शिक्षा के बाद किसी काम में लग सकें व रोजगार प्राप्त कर सकें। ताकि ये बच्चे शिक्षा प्रक्रिया में बने रहें।

इसके अतिरिक्त तीसरा मुख्य कारण विद्यालय संबंधी कारण थे। जिसमें मुख्य कारक थे, अध्यापकों द्वारा सजा देना, घर का काम, शिक्षण विधियों का रोचक न होना व पाठ्यक्रम रोचक न होना। बच्चों को विद्यालय में बनाए रखने के लिए या शिक्षा को और बढ़िया बनाने के लिए शिक्षक द्वारा विभिन्न शिक्षण विधियों का प्रयोग करना चाहिए ताकि बच्चों की इन शिक्षण विधियों के माध्यम से शिक्षा में रुचि बनी रही तथा इसके साथ-साथ बच्चों की कक्षा के पाठ्यक्रम में गतिविधियों को भी शामिल किया जाए ताकि बच्चों का मानसिक विकास के साथ-साथ शारीरिक विकास भी हो व उनका रुझान शिक्षा में बना रहे। इसके अतिरिक्त शिक्षकों के शिक्षक प्रशिक्षण पर भी बल देना चाहिए ताकि वह इन बच्चों के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार अपना सकें तथा साथ-साथ समावेशी शिक्षा पर भी जोर दे सकें ताकि वह सभी बच्चों की समस्या को समझ सकें और उनमें शिक्षा के प्रति झुकाव बना रहे।

इसके अतिरिक्त नीतिकारों को नीतियाँ बनाते समय समाज के वंचित वर्ग के बच्चों की समस्या को समझना चाहिए तथा इसके साथ-साथ उन्हें शिक्षा के समान अवसर भी प्रदान किए जाने चाहिए। इन बच्चों के लिए इनके अधिकारों का लाभ देने के लिए अलग से नीतियों का विकास होना चाहिए। इन बच्चों को शिक्षा के दायरे में लेकर आना ही नहीं, बल्कि इनको शिक्षा की प्रक्रिया में बाँधे रखना

भी बहुत ज़रूरी है। क्योंकि ये बच्चे भी समाज के विकास में उतने ही भागीदार हैं जितने अन्य बच्चे। इसके साथ-साथ गुणवत्तापूर्ण शिक्षा भी प्रदान की जाए ताकि उनके दृष्टिकोण में बदलाव आ सके। नामांकन में वृद्धि होना कहीं भी यह सुनिश्चित नहीं करता कि शिक्षा भी गुणवत्तापूर्ण मिल रही है। इन वंचित वर्गों के लिए सामाजिक सुरक्षा पॉलिसी को लागू किया जाना चाहिए ताकि उन्हें स्वास्थ्य व शिक्षा, दोनों की सुनिश्चितता प्रदान हो सके। इसके साथ-साथ इन बच्चों को जो शिक्षा मिल रही है वह सरकार द्वारा लागू की गई नीतियों व कार्यक्रमों की निगरानी तंत्र में होनी चाहिए ताकि उनको मिलने वाली शिक्षा की गुणवत्ता को मापा जा सके।

निष्कर्ष

शिक्षा मानव जीवन के विकास में मुख्य भूमिका निभाती है। शिक्षा किसी भी देश की सामाजिक, आर्थिक विकास की सीढ़ी है किसी देश में शिक्षा की कमी या शिक्षा के संसाधनों की कमी उस देश को विकसित देश बनने में रुकावट पैदा करती है। बच्चों में विद्यालय छोड़ने की प्रवृत्ति जो आज भारत जैसे विकासशील देशों में मिल रही है, यह कहीं-न-कहीं भारत की सरकारों द्वारा बनाई गई नीतियों, कार्यक्रमों व सामाजिक व्यवस्था पर एक बहुत बड़ा प्रश्न चिह्न लगा रही है। बच्चे किसी भी समाज का आधार होते हैं। आज भारत दुनिया में सबसे युवा देशों में शुमार है। अगर हम युवाओं को बेहतर नहीं बनाएँगे तो हमारा आने वाला कल कैसे बेहतर होगा। विद्यालयी शिक्षा मानवीय जीवन का

आधार है, अगर आधार मजबूत नहीं होगा तो उस पर किसी भी राष्ट्र का निर्माण भी स्थायी नहीं होगा। बच्चों द्वारा विद्यालयी शिक्षा छोड़ना कहीं-न-कहीं भारतीय समाज की रूपरेखा पर एक तीखा कटाक्ष है। अध्ययन में पाया गया कि बच्चों की विद्यालयी शिक्षा छोड़ने में गरीबी, माता-पिता की अज्ञानता, घर का वातावरण, बच्चों में जेंडर भेदभाव, विवाह, रोजगार, पाठ्यक्रम रुचिकार न होना इत्यादि मुख्य कारण हैं जो बच्चों की शिक्षा को प्रभावित कर रहे हैं। सरकारों द्वारा शिक्षा को सार्वभौमिक करने में

अथक प्रयास तो किया जा रहा है, लेकिन ये सब प्रयास धराशायी होते जा रहे हैं। हालाँकि नामांकन दर में तो वृद्धि हुई है, लेकिन विद्यालय छोड़ने की दर भी कक्षा का स्तर बढ़ने पर बढ़ी है। बच्चों को शिक्षा में नामांकन करवाना ही नहीं, उन्हें लगातार शिक्षा प्रदान करना भी जरूरी है। आज सरकारों को जरूरत है कि वो समाज में जो असमानताएँ एवं सामाजिक समस्याएँ शिक्षा जैसी मुख्य आधारभूत सेवा में रुकावट बन रही हैं, उन्हें दूर करें ताकि बच्चों के विकास के साथ-साथ राष्ट्र का निर्माण हो सके।

संदर्भ

- अग्रवाल, यशपाल और चुध, सुनीता. 2003. लर्निंग अचीवमेंट ऑफ़ स्लम चिल्ड्रन इन दिल्ली. न्यूपा ओकैजिनल पेपर. अंक 34. न्यूपा, नयी दिल्ली.
- काले, आकाश. 2017. रीजन फ़ॉर स्कूल ड्रॉपआउट — ए स्टडी इन स्लम ऑफ़ पूना. बी.ए. डिज़रटेशन. टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ़ सोशल साइंस, मुंबई, महाराष्ट्र.
- कौर, सतविंदरपाल. 2012. स्कूल ड्रॉपआउट्स एट एलीमेंट्री स्टेज. मैन एंड डिवेलपमेंट. अंक 3. पृ. 117–126.
- कौर, हरप्रीत. 2017. ड्रॉपआउट इन स्लम ऑफ़ चंडीगढ़ इन कॉन्टेक्स्ट ऑफ़ स्मार्ट सिटी प्रोजेक्ट. एम.एड डिज़रटेशन. पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़, पंजाब.
- खासनाबिस, रतन और चटर्जी, तानिया. 2007. इन्वॉल्विंग एंड रीटेनिंग स्लम चिल्ड्रेन इन. फ़ॉर्मल स्कूल. इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली. वर्ष 42, अंक 22.
- खोखर, ए. गर्ग, सुनीता और एन. भारती. 2005. डेटर्मिनेन्ट्स ऑफ़ रीजन ऑफ़ स्कूल ड्रॉपआउट्स अमंग ऑफ़ एन अर्बन स्लम ऑफ़ दिल्ली. इंडियन जर्नल ऑफ़ कम्युनिटी सर्विसेज. नयी दिल्ली
- गोविंदराजु, र. और वेंकटेशन, श्रीनिवासन. 2010. ए स्टडी ऑफ़ स्कूल ड्रॉपआउट्स इन रूरल सेटिंग. जर्नल ऑफ़ साइकोलॉजी. वर्ष 1, अंक 1. पृ. 47–53.
- . गोविंदा, रंगाचार. 1995. स्टेट्स ऑफ़ प्राथमिक एजुकेशन ऑफ़ द अर्बन पूअर इन इंडिया. रिसर्च रिपोर्ट यूनिसेफ़.
- . 2002. इंडियन एजुकेशन रिपोर्ट. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.
- चुध, सुनीता. 2011. ड्रॉपआउट इन सेकंडरी एजुकेशन — ए स्टडी ऑफ़ न्यू दिल्ली. न्यूपा, नयी दिल्ली.
- नाथ, आई., हेल्डर, के. और मैटी, एन. सी. 2013. एलीमेंट्री एजुकेशन ऑफ़ स्लम चिल्ड्रन — एन अटैम्प्ट टु रीच द अनरीचड. इंडियन जर्नल ऑफ़ एजुकेशनल रिसर्च. वर्ष 2, पृ. 68–81.
- पटेल, सुरभि. 1983. इक्वालिटी ऑफ़ एजुकेशन ऑपर्ट्युनिटी इन इंडिया — ए मिथ ओर रियलिटी? नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली

- प्लान इंडिया. 2009. व्हाई आर चिल्ड्रन आउट ऑफ स्कूल? ए समरी ऑफ द स्टडी पार्टिसिपेटरी एप्रोच टू आईडेंटिफाई रीज़न फ़ॉर एक्सक्लूशन अमंग आउट ऑफ स्कूल चिल्ड्रन कंडक्टेड इन फ़ोर स्टेट्स ऑफ इंडिया. नयी दिल्ली
- भारत की जनगणना. 2011. *फाइनल पॉप्युलेशन टेबल*. ऑफिस ऑफ द रजिस्टर जनरल ऑफ इंडिया. मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेयर्स, गवर्मेंट ऑफ इंडिया, नयी दिल्ली.
- मोहंती, प्रासमिता. 2014. नॉन-नरोलमेंट एंड ड्रॉपआउट इन एलीमेंट्री एजुकेशन — ए स्टडी ऑफ स्कैवेंजर्स चिल्ड्रन लीविंग इन अर्बन स्लम्स ऑफ लखनऊ एंड कानपुर. *यूरोपियन अकादमिक रिसर्च*. वर्ष-1, अंक-12. पृ. 5664–5677.
- यदुप्पनवार. 2002. फ़ैक्टर्स इन्फ्लुएंस एलीमेंट्री स्कूलस. *सोशल वेलफेयर*. वर्ष 48, अंक 10. पृ. 10–14
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद. 2009. *एथें ऑल इंडिया स्कूल एजुकेशन सर्वे*. एन. सी. ई. आर.टी., नयी दिल्ली.
- . 2017. *राष्ट्रीय उपलब्धि सर्वेक्षण- 2017*. एन. सी. ई. आर. टी., नयी दिल्ली.
- सेंटर फ़ॉर डिवेलपमेंट इकोनॉमिक्स. पी.आर.ओ.बी.इ. 1997. *पब्लिक रिपोर्ट ऑन बेसिक एजुकेशन इन इंडिया*. द प्रोब टीम, सेंटर फ़ॉर डिवेलपमेंट इकोनॉमिक्स. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.
- सामाजिक एवं ग्रामीण शोध संस्थान. 2014. *नेशनल सैपल सर्वे ऑफ एस्टीमेशन ऑफ आउट ऑफ स्कूल चिल्ड्रन इन द ऐज 6-13 इन इंडिया*.
- सुनाजिता, यूको. 2013. फ़ैक्टर्स दैट प्रेवेन्ट्स चिल्ड्रन फ़्रॉम गैनिंग एक्सेस टू स्कूलिंग—ए स्टडी ऑफ दिल्ली स्लम हाउसहोल्ड्स. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशनल डिवेलपमेंट*. वर्ष 33 अंक 4. पृ. 348–357
- सोरोकिन, पिटीरिम और एलेक्जेंड्रोविच. 1959. *सोशल एंड कल्चरल मोबिलिटी*. फ्री प्रेस., न्यू यॉर्क.
- <http://www-indianet-nl/pdf/IndiaExclusionReport20132014-pdf>
- https://cfsc-niua-rg/sites/default/files/Status_of_children_in_urban_India&Baseline_study_2016-pdf;

विद्यालयी शिक्षा द्वारा जीवन कौशलों का विकास

उमेन्द्र सिंह*

शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को भावी जीवन के लिए तैयार करना है। ताकि वे जीवन में आने वाली कठिनाइयों और चुनौतियों का सामना उचित ढंग से कर सकें। वर्तमान समय की परिस्थितियों में शिक्षा जीवन कौशलों पर आधारित होनी चाहिए। विद्यार्थियों में जीवन कौशलों का विकास होगा तो वे अपने कार्य को उचित प्रकार से करते हुए समाज के एक सक्रिय, उत्तरदायी एवं योग्य नागरिक बन सकेंगे। इस लेख में लेखक ने जीवन कौशलों के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख करते हुए शिक्षक द्वारा आयोजित की जाने वाली शैक्षणिक गतिविधियों के माध्यम से विकसित किए जाने वाले जीवन कौशलों पर प्रकाश डाला है।

प्रस्तावना

शिक्षा के द्वारा व्यक्ति जीवन के प्रति एक उचित दृष्टि विकसित करता है। शिक्षा व्यक्ति को जीवन की समस्याओं का समाधान करने के लिए तैयार करती है। जीवन संघर्ष से पूर्ण है, इसलिए व्यक्ति उचित शिक्षा एवं प्रशिक्षण के माध्यम से जीवन को उन्नतशील, सुसंस्कृत और सभ्य बनाता है। आज हम 21वीं शताब्दी के उच्च तकनीक से पूर्ण समाज में रह रहे हैं, जहाँ सूचना तकनीकी के बढ़ते प्रभाव के कारण शिक्षा की पारंपरिक अवधारणाएँ परिवर्तित हो रही हैं। आज शिक्षा में जीवन कौशल उपागम का महत्व बढ़ गया है। भविष्य के विद्यार्थी को सृजनात्मक चिंतन, समस्याओं का समाधान करने, निर्णय लेने और संप्रेषण कौशल को सीखने

की आवश्यकता है, न कि केवल ज्ञान का अर्जन करने और तथ्यों को स्मरण रखने की। समाज के सक्रिय, योग्य और उत्तरदायी सदस्य के निर्माण के लिए शिक्षा में क्रांतिकारी बदलाव हुए हैं —

- सूचना पर आधारित शिक्षक-केंद्रित शिक्षा बदलकर क्रिया पर आधारित विद्यार्थी-केंद्रित शिक्षा हो गई है।
- रटने पर बल के बजाय कैसे किया जाए, या कैसे सोचा जाए, पर जोर है।
- अवांछित सूचनाओं को प्रदान करने के स्थान पर मनो-सामाजिक योग्यताओं और हस्तकौशलों के सिखाने पर बल दिया गया है।

अतः जीवन कौशल उपागम पारंपरिक शैक्षिक उपागम से भिन्न है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 1997

में जीवन कौशलों को जीवन का एक ढंग बताते हुए व्याख्या की है।

‘जीवन कौशल, मनो-सामाजिक योग्यताओं और अंतर्वैयक्तिक कौशलों का एक समूह है जो व्यक्ति को निर्णय लेने, समस्या का हल करने, सृजनात्मक एवं आलोचनात्मक ढंग से सोचने, प्रभावशाली ढंग से संवाद करने, स्वस्थ संबंधों का निर्माण करने, परानुभूति करने और अपने जीवन को स्वस्थ एवं उत्पादित ढंग से व्यवस्थित करने में सहायता करता है। ये सभी क्षमताएँ बालकों को जीवन की कठिन परिस्थितियों का सामना करने और मानसिक एवं सामाजिक योग्यताएँ विकसित करने में सहायक होती हैं।’

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों में जीवन कौशलों का विकास होना चाहिए, परंतु वर्तमान शिक्षा पद्धति में विद्यार्थी के वास्तविक जीवन के अनुभवों तथा विद्यालयी पाठ्यक्रम के बीच एक अंतराल है। इस कारण कुछ विद्यार्थी जीवन में आने वाली चुनौतियों और कठिनाइयों का सामना करने में सक्षम नहीं हैं। हमारी शिक्षा विद्यार्थियों में जीवन कौशलों का विकास नहीं कर पा रही है। इन परिस्थितियों के कारण विद्यार्थियों में चिंता, तनाव, हताशा उत्पन्न होती है। शिक्षाविदों ने शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना बताया है। इसी क्रम में अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1996) ने जीवन कौशलों के सफल प्रशिक्षण द्वारा बालक को एक पूर्ण व्यक्ति बनाने के लिए शिक्षा के अग्रलिखित तीन वैश्विक उद्देश्य निश्चित किए हैं —

- सृजनात्मकता का विकास;
- सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास; और
- वैज्ञानिक मानवतावाद को प्रोत्साहित करना।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के जीवन कौशलों को विकसित करके ही बालक को पूर्ण व्यक्ति बनाया जा सकता है। शिक्षा ही एक ऐसा यंत्र है जो इस उद्देश्य को पूर्ण करने में सक्षम है, जैसे—

- जीवन कौशल के अर्थ से परिचित कराना।
- जीवन कौशलों के प्रकारों से अवगत कराना।
- शिक्षा में जीवन कौशलों के महत्व का ज्ञान कराना।
- जीवन कौशलों पर आधारित विभिन्न शैक्षणिक गतिविधियों से परिचित कराना।
- विद्यालयी शिक्षकों को विद्यार्थियों में जीवन कौशल विकसित करने हेतु सुझाव देना।

जीवन कौशलों के प्रकार

यूनीसेफ़, यूनेस्को तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन ने मुख्य रूप से निम्नलिखित नौ प्रकार के जीवन कौशल बताए हैं —

1. समस्या समाधान

जीवन में आने वाली समस्या को समझने और उसके समाधान को निकालने की प्रक्रिया ही समस्या समाधान है। कुछ ऐसी समस्याएँ जो सुलझ नहीं पातीं, मानसिक तनाव उत्पन्न करती हैं।

2. निर्णय निर्माण

समस्या को हल करने के लिए तार्किक निष्कर्ष निकालकर उचित कार्य करना ही निर्णय निर्माण

है। विभिन्न विकल्पों के होने पर उचित विकल्प का चयन करना जीवन में अत्यंत आवश्यक होता है।

3. आलोचनात्मक चिंतन

उचित कारणों एवं साक्ष्यों के आधार पर वस्तुनिष्ठ निर्णय लेना ही आलोचनात्मक चिंतन है। यह हमें ऐसे कारणों को जानने में सहायता करता है जो हमारे दृष्टिकोण और व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

4. सृजनात्मक चिंतन

किसी कार्य को एक नये व अलग तरीके से देखने व करने की योग्यता सृजनात्मक चिंतन होती है। मौलिक विचारों को प्रस्तुत करना और दी गई समस्या के लिए अनेक उपयोगी समाधान ढूँढ़ना ही सृजनात्मक चिंतन का कार्य है।

5. संप्रेषण कौशल

प्रभावी ढंग से बोलने, पढ़ने, लिखने एवं सुनने की योग्यता ही संप्रेषण कौशल है। प्रभावी संप्रेषण के लिए उच्चारण की शुद्धता, विचारों का धनी एवं दृश्य अंतःक्रियाओं में कुशलता आवश्यक होती है।

6. आत्म-जागरूकता

स्वयं को जानने की योग्यता ही आत्म जागरूकता है। कोई व्यक्ति स्वयं क्या सोचता है? क्या अनुभव करता है? और क्या करता है? आदि का ज्ञान उसे स्व-जागरूक बनाता है। अपनी पहचान, अपना चरित्र, अपनी सबलता, अपनी कमजोरी, अपनी इच्छाएँ एवं अपनी

पसंद व नापसंद सभी आत्म-जागरूकता में सम्मिलित होते हैं।

7. तनाव प्रबंधन

तनावपूर्ण परिस्थितियों में स्वयं को स्थिर बनाए रखना ही तनाव प्रबंधन कहलाता है। तनाव हमें कैसे प्रभावित करता है? इसे किस प्रकार दूर किया जा सकता है? और किस प्रकार अपनी जीवन शैली को बनाकर रखा जाए? ताकि तनावमुक्त रहा जा सके, इन सबका कौशल ही तनाव प्रबंधन है।

8. परानुभूति

दूसरे के स्थान पर स्वयं को रखकर देखना ही परानुभूति है। अन्य लोगों की आवश्यकताओं, भावनाओं और इच्छाओं को जानने व समझने के लिए परानुभूति की आवश्यकता होती है। इसके अभाव में हमारा संप्रेषण एक तरफ़ा हो जाता है।

9. अंतर्वैयक्तिक संबंध

अंतर्वैयक्तिक संबंध कौशल हमें अन्य लोगों से सकारात्मक ढंग से संबंध बनाने में सहायता करता है। यह मैत्रीपूर्ण संबंधों को बनाए रखने की क्षमता प्रदान करता है। इस कौशल के विकास के लिए व्यक्ति में प्रभावी संप्रेषण एवं अच्छी श्रवण क्षमता का गुण होना आवश्यक है।

शिक्षा द्वारा जीवन कौशलों का विकास

शिक्षा प्राप्त करने का अर्थ केवल ज्ञान का अर्जन करना ही नहीं है, बल्कि जीवन कौशलों का विकास

करना भी है। जीवन कौशलों के साथ-ही-साथ आंतरिक क्षमताओं एवं आवश्यक हस्तकौशलों का विकास भी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। इन सभी योग्यताओं का विकास विभिन्न प्रकार के विषयों को पढ़ाने मात्र से नहीं हो सकता। इसके लिए शिक्षकों को प्रतिबद्धता के साथ कक्षा में सीखने की प्रक्रिया के दौरान ही जीवन कौशलों को मूल्यों के समान विकसित करना चाहिए। जीवन कौशलों के विकास का संबंध व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास से होता है। यदि विद्यार्थियों में प्रारंभ से ही जीवन कौशलों का विकास किया जाता है तो वह भविष्य में आने वाली चुनौतियों

और कठिनाइयों का सामना उचित प्रकार से कर सकते हैं। अतः शिक्षा में जीवन कौशलों का अत्यंत महत्व है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005 में भी जोर दिया गया है कि जीवन संबंधी कौशल, जैसे — आलोचनात्मक चिंतन का कौशल, अन्य लोगों के साथ संप्रेषण के कौशल, तोलमोल करने/मना करने के कौशल, निर्णय लेने या समस्या सुलझाने के कौशल और परिस्थितियों से निपटने तथा स्वयं की व्यवस्था आदि के कौशल का रोजमर्रा के जीवन की चुनौतियों और माँगों के संदर्भ में बड़ा महत्व होता है।

सारणी 1 — शैक्षणिक गतिविधि कराने से होने वाले संभावित कौशलों का विकास

क्र. सं.	शैक्षणिक गतिविधियाँ	संभावित कौशल
1.	समूह कार्य	<ul style="list-style-type: none"> • संप्रेषण कौशल • परानुभूति • संबंध
2.	प्रोजेक्ट	<ul style="list-style-type: none"> • समस्या समाधान • सृजनात्मक चिंतन • आलोचनात्मक चिंतन • अंतर्व्यक्तिक संबंध
3.	खेल एवं नाट्य (भूमिका निर्वाह)	<ul style="list-style-type: none"> • तनाव प्रबंधन • अंतर्व्यक्तिक संबंध • परानुभूति
4.	क्विज़ (Quiz)	<ul style="list-style-type: none"> • संप्रेषण कौशल • सृजनात्मक चिंतन • आलोचनात्मक चिंतन • अंतर्व्यक्तिक संबंध
5.	वाद-विवाद एवं विचार-विमर्श	<ul style="list-style-type: none"> • समस्या समाधान • निर्णय लेना • संप्रेषण कौशल
6.	बुद्धिशीलता या मस्तिष्क झंझावत	<ul style="list-style-type: none"> • समस्या समाधान

जीवन कौशलों के विकास के लिए विभिन्न शैक्षणिक गतिविधियाँ

जीवन कौशलों की शिक्षा के लिए किसी विशेष प्रकार के पाठ्यक्रम की आवश्यकता नहीं होती है, बल्कि विभिन्न विषयों को पढ़ाते समय प्रारंभ से ही विद्यार्थियों में इन्हें मूल्यों की भाँति विकसित किया जा सकता है। इसके लिए शिक्षकों को सुसंरचित कक्षीय समय-सारणी में औपचारिक शैक्षणिक कार्यक्रम के अनुसार ही जीवन कौशलों का विकास करना चाहिए। कक्षा में पढ़ाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के विषयों में उचित ढंग से पाठ्यगामी एवं पाठ्य-सहगामी क्रियाओं को नियोजित कर विद्यार्थियों में जीवन कौशल विकसित किए जाने चाहिए। विद्यार्थियों में निम्नलिखित शैक्षणिक गतिविधियों के माध्यम से भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवन कौशल विकसित किए जा सकते हैं, जिसे सारणी 1 में दिया गया है।

जीवन कौशल विकसित करने में शिक्षकों की भूमिका

जीवन कौशलों की शिक्षा देने में शिक्षकों का प्रमुख योगदान होता है। इसके लिए किसी विशेष

प्रयास की आवश्यकता नहीं है, बल्कि प्रत्येक शिक्षक यदि अपने विषय को नियोजित ढंग से तैयार कर विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करे तो जीवन कौशलों का विकास आसानी से किया जा सकता है, शिक्षक इस बात का ध्यान रखें कि विद्यार्थियों की इन क्षेत्रों में वृद्धि किस प्रकार हो रही है। विद्यार्थियों को क्रिया-आधारित शिक्षण प्रदान करें ताकि उपर्युक्त वर्णित क्रियाओं के माध्यम से जीवन कौशल विकसित किए जा सकें। विद्यार्थियों को भविष्य में होने वाली समस्याओं और चुनौतियों का सामना अच्छे प्रकार से करने योग्य बनाने के लिए शिक्षकों को उनकी आवश्यकताओं को समझना चाहिए। आवश्यक कौशलों का विकास करने के लिए जो कारण उत्तरदायी होते हैं, उनके प्रति शिक्षकों को संवेदनशील होना चाहिए। शिक्षकों को विद्यार्थियों में जीवन कौशल विकसित करने के लिए यह भी आवश्यक है कि वे उनके लिए आदर्श स्थापित करें। अपने उदाहरणों से विद्यार्थियों को दिखाएँ कि कैसे जीवन कौशलों के माध्यम से अच्छे समाज का निर्माण किया जा सकता है और राष्ट्र का एक सक्रिय, उत्तरदायी एवं योग्य नागरिक बना जा सकता है।

संदर्भ

- अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग. 1996. *लर्निंग द ट्रेजर विदइन*. यूनेस्को, पेरिस.
 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.
 विश्व स्वास्थ्य संगठन. 1997. *विद्यालयों में जीवन कौशल शिक्षा*. जेनेवा.

बहुभाषिकता गाँधीजी की भाषा नीति और भाषा चिंतन

चित्रा सिंह*

भारतीय समाज एक बहुभाषिक समाज है, इस तथ्य से हम सब वाकिफ हैं, लेकिन हमारी शिक्षा नीति और पाठ्यचर्या में इस तथ्य को किस तरह समाहित किया जाए कि हमारे बहुभाषिक समाज की विभिन्न भाषाओं के मध्य एक सामंजस्य बना रहे और कोई भी भाषा विशेष स्वयं को अपेक्षित अनुभव न करे, इस बारे में बहुत गहनता से विचार नहीं किया गया है। बहुभाषिक समाज को एक संपर्क भाषा की भी आवश्यकता होती ही है, इसे हमारी राजनीति ने अनंत बहस का मुद्दा बनाकर विदेश की एक ऐसी भाषा को प्रतिष्ठा दे दी है जो हमारी जातीय अस्मिता से कतई मेल नहीं रखती। इस परिदृश्य में जब हम गाँधीजी के भाषा संबंधी विचार और चिंतन का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि स्वतंत्रता संग्राम नेतृत्व के अपने व्यस्ततम दौर में भी उन्होंने आने वाले समय और परिस्थितियों, विशेष रूप से शिक्षा के क्षेत्र में भाषा शिक्षण का क्या स्वरूप होना चाहिए और कैसे इसे कार्यरूप में परिणित किया जा सकता है, इस पर गहराई से चिंतन किया था और आगे आने वाली कठिनाइयों को भाँपकर उन्हें दूर करने के उपाय भी दे दिए थे। जो विचार उन्होंने प्रस्तुत किए थे वे मात्र सैद्धांतिक नहीं थे, वरन् व्यावहारिक भी थे और आज भी हैं। सिद्धांतों का व्यावहारिक निरूपण गाँधीजी के जीवन दर्शन का प्रस्थान बिंदु रहा है, वे वही विचार प्रस्तुत करते थे जिसे वह अपने जीवन में अपना चुके होते थे। इसलिए गुजराती होते हुए भी उन्होंने हिंदी/ऊर्दू और दक्षिण भारतीय भाषाएँ स्वयं सीखीं और बताया कि शिक्षा का माध्यम भले ही मातृभाषा हो, लेकिन देश की एक संपर्क भाषा भी हो और हर देशवासी मातृभाषा के अलावा कम-से-कम एक अन्य प्रांत की भाषा भी सीखे-जाने। एक बहुभाषिक राष्ट्र की भाषा नीति के लिए ये विचार बहुत महत्वपूर्ण हैं और वर्तमान परिदृश्य में यह और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं, जबकि त्रिभाषा फ़ार्मूले पर आधारित हमारी भाषा नीति में मातृभाषा और अंग्रेजी के बाद तीसरी भाषा के रूप में अन्य विदेशी भाषाओं को स्थान दिया जाने लगा है जबकि तीसरी भाषा हमारे देश के प्रांतों की भाषा भी हो सकती है, इस पर विचार भी नहीं किया जा रहा है। इस लेख में हमारी भाषा नीति की इस विडंबना को गाँधीजी के भाषा चिंतन के प्रकाश में देखने का प्रयास किया गया है और गाँधीजी के विचार किस तरह आज भी कार्यान्वित किए जा सकते हैं, इस बारे में सुझाव भी दिए गए हैं।

प्रस्तावना

भाषा का प्रश्न एक जटिल प्रश्न है और एक संवेदनशील मुद्दा भी। भारत जैसे बहुभाषीय समाज में यह और भी जटिल हो जाता है। क्योंकि भाषा ही आत्मसम्मान, आत्म-अन्वेषण, आत्म-उत्खनन, आत्म-बोध और आत्म-साक्षात्कार का माध्यम होती है। एक संस्कृति के स्वप्नों, संकल्पनाओं को भाषा की स्मृतियाँ ही सुरक्षित रखती हैं।

गाँधीजी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इसका अनुभव कर भविष्य में आने वाली कठिनाइयों को भाँप लिया था और इन्हें दूर करने के उपाय भी सुझा दिए थे, यही नहीं उन पर अमल भी प्रारंभ कर दिया था। आज जब हम भाषाओं को लेकर हमारे मतभेदों को, राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर एकमत के अभाव और भाषाओं को लेकर हमारी संवेदनहीनता पर भी विचार करें तो हम एक बार फिर गाँधीजी की दूरगामी सोच और दूरदर्शिता का अनुभव कर सकते हैं। लेकिन बात सिर्फ अनुभव करने की नहीं उनकी ही तरह अमल में लाने की भी है। कुछ तमाम आदर्शों को तो हमने भुला दिया है और उन विचारों के पालन को हमारी मानवीय क्षमताओं के परे मान पूजनीय मात्र बना दिया है, लेकिन जैसा हम ऊपर कह चुके हैं भाषा का प्रश्न एक जटिल प्रश्न है और इसका उत्तर गाँधीजी की भाषा नीति और दृष्टि पर विचार और अमल करके पाया जा सकता है। यह ऐसा मुद्दा भी है जिस पर हमारा हमेशा से तात्कालिक रवैया रहा है और इस पर 'राजनीति' ही ज्यादा होती रही है, अब हमें इस बारे में गंभीर होना होगा, क्योंकि अंग्रेजी के बाद दूसरी यूरोपीय भाषाओं का हस्तक्षेप भी प्रारंभ

हो गया है और इससे आज़ादी हमें एक बार फिर गाँधीजी ही दिला सकते हैं।

गाँधीजी और अंग्रेजी

इंग्लैंड में शिक्षित होकर भी गाँधीजी देश में अंग्रेजी के बढ़ते प्रभुत्व को लेकर बहुत सजग थे वे *यंग इंडिया* में लिखते हैं, “बहुत से मामलों में, शिक्षा का एक ही अर्थ लगाया जाता है — अंग्रेजी का ज्ञान। मेरी नज़र में यही हमारी गुलामी और निम्नता का चिह्न है। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि भारतीय भाषाएँ कुचल दी जाएँ और उनको पोषण न मिले।” (*यंग इंडिया*, 1921)

हरिजन के 1947 के एक अंक में वह यह रेखांकित करते हैं कि, “अंग्रेजी शिक्षा ने हमारे दिमागों को कंगाल बना दिया है, कमज़ोर कर दिया है और हमें साहसी नागरिकता के लिए कभी तैयार नहीं किया।”

गाँधीजी आगे कहते हैं, “मेरा सुविचारित मत है कि अंग्रेजी की शिक्षा जिस रूप में हमारे यहाँ दी गई है, उसने अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीयों का दुर्बलीकरण किया है।”

उन्होंने इसलिए *हिंद स्वराज* में स्वीकारोक्ति की है कि, “अपने देश में गर मुझे इंसफ पाना हो तो मुझे अंग्रेजी भाषा का उपयोग करना पड़े। बैरिस्टर होने पर मैं स्वभाषा बोल ही नहीं सकूँ। दूसरे आदमी को मेरे लिए तरजुमा कर देना चाहिए। यह कुछ कम दंभ है? यह गुलामी की हद नहीं तो और क्या है? हिंदुस्तान को गुलाम बनाने वाले हम अंग्रेजी जानने वाले लोग ही हैं।” गाँधीजी की अंतरात्मा से निकले ये बीज वाक्य आज ज्यादा महत्वपूर्ण हैं और यह सौ फीसद सही हैं कि “हिंदुस्तान को गुलाम बनाने वाले हम अंग्रेजी जानने वाले लोग ही हैं।”

एक बार गाँधीजी बनारस हिंदू विश्वविद्यालय गए। उन्होंने वहाँ के प्रवेश द्वार पर लक्षित किया कि ‘बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी’ अंग्रेजी में लिखा है और इसने तीन-चैथाई जगह घेर रखी है। यही नाम हिंदी में इतने छोटे हरफों में लिखा था कि पढ़ा नहीं गया। इसे अंग्रेजी साम्राज्यवाद का सबूत मानते हुए गाँधीजी ने अपने भाषण में कहा, “अंग्रेजों को हम गालियाँ देते हैं कि उन्होंने हिंदुस्तान को गुलाम बना रखा है, लेकिन अंग्रेजी के तो हम खुद गुलाम बन गए हैं। आज कोई यह कहता है कि मैं अंग्रेजों की तरह अंग्रेजी बोल लेता हूँ तो हम मारे खुशी के फूले नहीं समाते। इससे बढ़कर दयनीय गुलामी क्या हो सकती है? इससे हमारे विद्यार्थियों पर अंग्रेजी जुबान का बोझ इतना बढ़ जाता है कि उन्हें दूसरी तरफ़ सिर उठाकर देखने की फुर्सत नहीं मिलती। यही वजह है कि उन्हें दरअसल जो सीखना चाहिए, उसे सीख नहीं पाते।”

उस समय बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में सर राधाकृष्णन थे, उन्होंने ही गाँधीजी को बुलाया था।

परंतु गाँधीजी अंग्रेजी वर्चस्व के विरोधी थे, अंग्रेजी पढ़ने के नहीं। वह एक जगह कहते हैं, “मैं अंग्रेज-विरोधी नहीं हूँ। मैं ब्रिटेन-विरोधी नहीं हूँ। पर मैं असत्य के विरोध में हूँ, छल-कपट के विरोध में हूँ। जब तक सरकार अन्याय पर आरुढ़ है, तब तक वह मुझे अपना शत्रु, कठोर शत्रु मान सकती है।”

गाँधीजी के अनुसार, “अंग्रेजी आज इसलिए पढ़ी जा रही है कि उसका व्यावसायिक एवं राजनीतिक महत्व है। हमारे बच्चे अंग्रेजी यह सोचकर पढ़ते हैं कि अंग्रेजी पढ़े बिना उन्हें नौकरियाँ नहीं मिलेंगी। लड़कियों को अंग्रेजी इसलिए पढ़ाई

जाती है कि इससे उनकी शादी में सहूलियत होगी। मुझे ऐसे परिवारों की जानकारी है, जहाँ अंग्रेजी मातृभाषा बताई जा रही है।”

गाँधीजी *हिंद स्वराज* में लिखते हैं, “करोड़ों लोगों को अंग्रेजी की शिक्षा देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मैकाले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी। यह कितने दुःख की बात है कि हम स्वराज की बात भी पराई भाषा में करते हैं?” गाँधीजी को इस बात का भी कम दुःख नहीं था कि हमारे अच्छे-से-अच्छे विचार प्रकट करने का ज़रिया है, अंग्रेजी, हमारी कांग्रेस का करोबार भी अंग्रेजी में चलता है। अगर ऐसा लंबे समय तक चला तो मेरा मानना है कि आने वाली पीढ़ी हमारा तिरस्कार करेगी और उसका शाप हमारी आत्मा को लगेगा। हमें समझना चाहिए कि अंग्रेजी शिक्षा और भाषा ने हमें गुलाम बनाया है। बैरिस्टर होने पर भी मैं स्वभाषा में बोल ही नहीं सकता। यह गुलामी की हद नहीं तो क्या है? इसमें मैं अंग्रेजों का दोष निकालूँ या अपना? हिंदुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेजी जानने वाले लोग ही हैं। राष्ट्र की हाथ अंग्रेजों पर नहीं पड़ेगी, बल्कि हम पर पड़ेगी।” (*हिंद स्वराज*, 1909)

विदेशी भाषा को माध्यम के रूप में सीखने में जो श्रम और समय नष्ट होता है, वह मूलज्ञान को प्राप्त करने पर होना चाहिए। इसलिए उन्होंने 2 सितंबर, 1921 के *नवजीवन* में लिखा था, “अगर मेरे हाथों में तानाशाही सत्ता हो तो मैं आज ही विदेशी माध्यम के ज़रिए दी जाने वाली हमारे लड़कों और लड़कियों की शिक्षा बंद करा दूँ और सारे शिक्षकों और प्रोफ़ेसरों से यह माध्यम बदलवा दूँ या उन्हें बर्खास्त कर दूँ।”

गाँधीजी अंग्रेजी भाषा के शत्रु नहीं थे, वे इसे अंतःसांस्कृतिक और अंतःभाषाई मित्र मानने के लिए तैयार थे, किंतु अपनी भाषा की अपेक्षा उसके प्रभुत्व को मानने से इनकार करते थे। वे कहते थे, “यदि विदेशी भाषाएँ और संस्कृतियाँ मेरे घर को सुगंधित करें, तो मैं विदेशी समीर के लिए अपनी चट्टानें खोल दूँगा। किंतु यदि वे तूफान बनकर मेरे घर को उखाड़ना चाहें तो चट्टान की तरह खड़ा हो जाऊँगा।” इस प्रकार हम देखते हैं कि उनका विरोध अंग्रेजी की गुलामी से था, वह गुलामी जो भारतीय भाषाओं को बर्बाद करने पर आमादा थी। भारत का भाषा-संकट अंग्रेजी राज की देन है, इस राजनीति को गाँधीजी अच्छी तरह समझते थे।

किसी विदेशी भाषा की अपेक्षा अपने देश की भाषा के प्रति गाँधीजी के मन में जो संवेदना थी, उसे याद करते हुए हमें यहाँ राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजी के उन शब्दों को उद्धृत करना चाहिए, जो उन्होंने 15 अगस्त, 1947 को बी.बी.सी. लंदन के संवाददाता को कहे थे। उन्होंने अपने संदेश में बस इतना कहा था, “दुनिया से कह दो गाँधी अंग्रेजी नहीं जानता।”

गाँधीजी और मातृभाषा

गांधी जी की अध्यक्षता में वर्धा में 22-23 अक्टूबर, 1937 को एक अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन हुआ था। इसमें प्रस्ताव पारित हुआ कि मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम हो।

वे हिंदी या हिंदुस्तानी के उत्कर्ष के साथ प्रांतीय भाषाओं के उत्कर्ष और इन भाषाओं के आधार पर

राज्य के जातीय पुनर्गठन के समर्थक थे। गाँधीजी ने दृढ़ता से कहा था कि मातृभाषा मनुष्य के मानसिक विकास के लिए उसी प्रकार स्वाभाविक है, जिस प्रकार माँ का दूध शिशु के विकास के लिए है।

वे कहते हैं, “हमारे युवक और युवतियाँ अंग्रेजी और दुनिया की दूसरी भाषाएँ खूब पढ़ें, लेकिन उनसे मैं आशा करूँगा कि वे अपने ज्ञान का प्रसार भारत की ओर से सारे संसार में प्रदान करें।

वे कहते थे, “हमें संकल्प के साथ अपनी सभी भाषाओं को उज्ज्वल, शानदार बनाना चाहिए। हमें अपनी भाषा में शिक्षा लेनी चाहिए, एक पढ़े-लिखे हिंदुस्तानी को अपनी भाषा का, हिंदू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को फ़ारसी का और सबको हिंदी का ज्ञान होना चाहिए।”

शिक्षा के माध्यम के संबंध में उनके स्पष्ट विचार थे। वे विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाना चाहते थे। वे मातृभाषा में ही बच्चे की शिक्षा के पक्षधर थे। उनका कहना था कि, “जिस प्रकार माँ के दूध से बच्चे के शरीर का निर्माण होता है, उसी प्रकार मातृभाषा के माध्यम से उसके मन और बुद्धि का विकास होता है। शिक्षा का कोई दूसरा माध्यम कैसे हो सकता है? यही तो प्रकृति का विधान है।” (श्रीमन्नारायण द्वारा *ऑन एजुकेशन* में उद्धृत) आज अंग्रेजी राज की बड़ाई करने वालों को गाँधीजी को भी याद करना चाहिए जो कहा करते थे, “विदेशी राज के दुष्परिणाम में से अंग्रेजी शिक्षा माध्यम सबसे भयंकर अभिशाप है और इतिहास इस पाप का सदा के लिए साक्षी रहेगा।” (*नवजीवन*, पृ. 27, 1958)।

गाँधीजी के मतानुसार शिक्षा के माध्यम का निर्णय लेना समूचे राष्ट्र का काम है। भाषाई परिवर्तन से संबंधित कोई भी निर्णय लेना शिक्षाविदों का काम नहीं है। वे इस बात का निर्णय नहीं ले सकते कि देश के बच्चों को अमुक भाषा के माध्यम से पढ़ाया जाना चाहिए। कौन-कौन से विषय बच्चों को पढ़ाए जाएँ, इसका निर्णय लेना भी शिक्षाविदों का काम नहीं है। शिक्षा और शिक्षाविदों का काम देश की इच्छाओं और निर्णयों को दृढ़ संकल्प के साथ पूरा करना है। गाँधीजी चाहते थे कि शिक्षा का निर्णय समूचा देश करे, केवल शिक्षाविद् ही नहीं।

वह यह भी कहते थे, “भारत को अपनी ही जलवायु, दृश्यावली और अपने ही साहित्य से पनपना है, भले ये इंग्लैंड की जलवायु, दृश्यावली और उसके साहित्य से कमतर हो। हमें और हमारी संतानों को अपनी विरासत पर ही अपनी प्रगति का महल खड़ा करना है। यदि हम उधार पर जिएँगे, हम खुद ही अपने को निर्बल कर लेंगे।” (हरिजन, 1938)। ये विचार आज भी सामयिक हैं, बस उन पर अमल का अभाव और बढ़ गया है।

गाँधीजी की भाषा नीति—हिंदी और हिंदुस्तानी
इस बारे में बात करने से पहले हमारी भाषा के इन दो स्वरूपों के बारे में अंग्रेजों की नीति को जान लेना चाहिए। इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है कि ‘हिंदुस्तानी’ भाषा अंग्रेजों का ‘आविष्कार’ थी। वे इसे भारत की संपर्क भाषा के रूप में देखते थे। जॉन गिलक्राइस्ट द्वारा प्रस्तावित ‘हिंदुस्तानी’ मुख्यतः अरबी-फ़ारसी मिश्रित उर्दू और गौणतः खड़ी बोली हिंदी थी। अंग्रेज कलकत्ता की

‘ओरियंटल सेमिनरी’ में जो ‘हिंदुस्तानी’ पढ़ाते थे, वह अरबी-फ़ारसी मिश्रित उर्दू थी। फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में भी 1813 तक इसी की परीक्षा होती थी, हालाँकि अंग्रेज संपूर्ण भारतीय विज्ञान का अध्ययन करते थे। 1837 में ‘हिंदुस्तानी’ को ईस्ट इंडिया कंपनी ने संविधान में परिवर्तन करके दरबारी और सरकारी भाषा का दर्जा दिया था। यह पहले फ़ारसी और नागरी, दोनों लिपियों में लिखी जा रही थी, पर जल्दी ही सिर्फ़ फ़ारसी लिपि में सीमित कर दी गई। उस समय हिंदू और मुसलमान एलीट समान रूप से फ़ारसी लिपि में लिखी जा रही उर्दू-उन्मुख ‘हिंदुस्तानी’ का इस्तेमाल करते थे। गौर करने की बात है कि हिंदी-उन्मुख हिंदुस्तानी का नागरी लिपि में लिखी गई खड़ी बोली हिंदी को प्रोत्साहन नहीं मिला, बल्कि अंग्रेजों द्वारा इसे ‘हिंदुस्तानी’ की गंवारू शैली कहा गया। इस ओर भी ध्यान जाना चाहिए कि अंग्रेजों ने ‘प्रेम सागर’ (लल्लू लाल) को हिंदुओं की भाषा का आदर्श रूप घोषित किया था। ‘प्रेम सागर’ की भाषा को भाषा भी नहीं, ‘संपर्क भाषा की एक शैली’ भर माना गया था।

इसके ठीक विपरीत गाँधीजी जिसे हिंदी कहते थे, उसका आशय हिंदुस्तानी होता था, आम आदमी की समझ में आने वाली हिंदी। इसका उद्देश्य था, एक साझे समाज की साझी भाषा बनाना। गाँधीजी की दृष्टि में ‘हिंदुस्तानी’ के कई चेहरे थे, जैसे “किसी बंगाली या दक्षिण भारतीय के द्वारा जो हिंदुस्तानी बोली जाएगी, उसमें संस्कृत मूल के शब्द ज़्यादा होंगे।” इससे ऐतिहासिक स्मृतियों में अधिक से अधिक साझेदारी का अवसर मिलता था। गाँधीजी ‘हिंदुस्तानी’ के समर्थक थे। इसका यह अर्थ नहीं

कि वे देश की प्रांतीय भाषाओं और हिंदी-उर्दू के विरोधी थे। वे सभी भारतीय भाषाओं की तरक्की चाहते थे और हिंदी-उर्दू को 'हिंदुस्तानी' का पोषक तत्व मानते थे।

उनके अनुसार, हिंदुस्तानी भाषा वह भाषा है जिसको उत्तर में हिंदू और मुसलमान बोलते हैं और जो नागरी अथवा अरबी लिपि में लिखी जाती है। वह एकदम संस्कृतनिष्ठ नहीं है, न वह एकदम फ़ारसी शब्दों से लदी हुई है। वे कहते हैं, "गाँव की बोली में जो माधुर्य मैं देखता हूँ, वह न लखनऊ के मुसलमान भाइयों की बोली में है, न प्रयाग के पंडितों की बोली में।" स्पष्ट है कि 'हिंदुस्तानी' की औपनिवेशिक धारणा से यह एक प्रस्थान है। गाँव की बोली से गाँधी का तात्पर्य यह सीधी-साधी हिंदी-हिंदुस्तानी है, जिसे हिंदू और मुसलमान दोनों बोलते हैं। हिंदी और उर्दू के बीच कोई विवाद न होता, अगर ये दोनों भाषाएँ साधारण बोलचाल में एक होतीं।

अतः गाँधी-प्रेमचंद के दौर में 'हिंदुस्तानी' एक औपनिवेशिक नहीं, राष्ट्रीय अवधारणा के रूप में सामने आई थी। यह उर्दू और हिंदी के मिले-जुले रूप की परिकल्पना से कुछ अधिक थी। पर यह भाषा अभी सुस्थिर नहीं हुई थी। इसलिए गाँधीजी की 'हिंदुस्तानी' पर बड़ी चकचक हुई। इसे हिंदी और उर्दू को विकृत करने वाली राजनीति कहा गया है। यह भी कहा गया कि अंग्रेजी के कारण ही इस देश में नवजागरण आया, राष्ट्रीयता का जन्म हुआ और उससे ही भारतीय भाषाओं ने पोषक तत्व प्राप्त किए। अंग्रेजी ही अब देश की संपर्क भाषा है उसे हटाते ही यह देश टूट जाएगा। अंग्रेजों ने हमें

स्वाधीनता का मूल्य ही नहीं उसे प्राप्त करने के रास्ते भी बताए हैं। अंग्रेजी को छोड़ना देश को बौद्धिक रूप से दिवालिया कर लेना है। कुछ कह रहे थे कि अब तो अंग्रेजी भारतीय भाषा है, उसे विदेशी भाषा कहना राजनीतिक विचार से गलत है। इसलिए अंग्रेजी वर्ग का हौसला यहाँ तक बढ़ गया था कि वे गाँधीजी और हिंदी को हारी हुई लड़ाई का नाम देते थे और यह हौसला आज भी पस्त नहीं हुआ है।

राष्ट्रभाषा का प्रश्न और गाँधीजी

राष्ट्रीय आंदोलनों के उभार के साथ भारत की राष्ट्रीय भाषाओं को लेकर प्रतिबद्धता बढ़ रही थी। उस ज़माने के जितने लोकप्रिय और बड़े नेता थे, वे हिंदी को आशा से देखते थे। राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर गाँधीजी का उत्तर स्पष्ट था और वह था 'हिंदी'। उनमें हिंदी के प्रति अदम्य उत्कंठा थी और दक्षिण अफ्रीका में भी गाँधीजी प्रवासी भारतवासियों के बच्चों के ऐसे विद्यालयों का स्व-संचालन ही नहीं करते थे, बल्कि दूसरों को भी प्रेरित कर ऐसी शिक्षा दिलवाते थे, जिससे भारत की मातृभाषाओं के माध्यम से हिंदी को आगे बढ़ाया जा सके। गाँधीजी ने हिंदी को मन, वचन, कर्म से राष्ट्रभाषा के रूप में देश के सामने प्रस्तुत किया।

गाँधीजी ने इसलिए दक्षिण अफ्रीका में ही भारतीयों को इस चेतना से परिचित कराने का काम किया। गाँधीजी की पड़पोती कीर्ति मेनन ने स्पष्ट कहा है कि, "गाँधीजी को भारतीय भाषाओं के साथ जुड़ने का अनुभव और अवसर दक्षिण अफ्रीका के अपने प्रवास के दौरान प्राप्त हुआ, जहाँ उन्होंने हिंदी सीखने की शुरुआत की, जिसे वह अकसर हिंदुस्तानी

कहा करते थे। साथ ही उन्होंने तमिल भाषा को भी सीखना शुरू किया। बाद में टॉलस्टाय फ़ार्म में उन्होंने बड़े स्तर पर भाषाई प्रयोग किए, जिसका नतीजा यह निकला कि वह स्कूल में बच्चों को तमिल और उर्दू पढ़ाने लगे। गाँधीजी के अपने शब्दों में, “हम भाषाई प्रशिक्षण के लिए तीन पीरियड देते थे। हिंदी, तमिल, गुजराती और उर्दू पढ़ाई जाती थी। बच्चों की पढ़ाई उनकी क्षेत्रीय भाषाओं के अनुसार की जाती थी। साथ ही अंग्रेज़ी को भी एक भाषा के रूप में पढ़ाया जाता था।...” इसीलिए गाँधीजी ने हिंदी को भारतीय लोगों को जोड़ने वाली भाषा कहा। गाँधीजी ने एक कदम आगे बढ़कर कहा था कि, “यह एक ऐसी भाषा है जो राज्य, क्षेत्रवाद से उठकर भारत के लोगों को एक सूत्र में पिरो सकती है।” गाँधीजी को यह अनुभव गुलामी के तीव्र और उत्कट दंश का अहसास होने के बाद प्राप्त हुआ था।

इससे पूर्व भारत में स्वतंत्रता के लिए 1857 में लड़ाई लड़ी गई। इस लड़ाई के परिणाम भी मौजूद थे, जिसकी विफलता के कारणों में एक कारण था भारतीयों के बीच संप्रेषणीयता के लिए किसी संपर्क भाषा का न होना। गाँधीजी का ध्यान सर्वप्रथम इसी ओर गया। 1915 में जब वे दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तो उन्होंने पूरे देश का भ्रमण किया और पाया कि हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो देश के अधिकांश क्षेत्रों में अधिकतर लोगों द्वारा बोली और समझी जाती है। उन्होंने देखा कि यह देश बहुभाषी देश है और यहाँ अनेक भाषाएँ हैं, किंतु उनके क्षेत्र सीमित हैं। उन्हें हिंदी ही एक ऐसी भाषा मिली जो देश को जोड़ने का काम करती है।

1906 में, *इंडियन ओपीनियन* में उन्होंने इस भाषा को मीठी, नम्र और ओजस्वी भाषा कहा था। 1909 में *हिंद स्वराज* में उन्होंने लिखा, “हर एक पढ़े-लिखे हिंदुस्तानी को अपनी भाषा को और सबको हिंदी भाषा का ज्ञान होना चाहिए।” वे चाहते थे कि शिक्षित वर्ग के बीच हिंदी को लोकप्रिय बनाया जाना आवश्यक है। भारत आते ही उन्होंने जिन आंदोलनों का नेतृत्व किया, उनमें हिंदी आंदोलन प्रमुख ही नहीं, बल्कि शीर्ष पर रहा। हिंदी सेवा को स्वतंत्रता आंदोलन का एक आवश्यक अंग बनाया गया, जिसके प्रचारक देश में हिंदी प्रचार-प्रसार में लग गए। गाँधीजी के दो मूल सिद्धांत थे — रूई की कताई और हिंदी सीखना।

दिनांक 3 जुलाई, 1917 को उन्होंने कहा था, “हिंदी जल्दी से जल्दी अंग्रेज़ी का स्थान ले ले, यह एक स्वयंसिद्ध उद्देश्य जान पड़ता है। हिंदी शिक्षित वर्ग के बीच समान माध्यम ही नहीं, बल्कि जनसाधारण के हृदय का द्वार बन सकती है। इस दिशा में देश की कोई भाषा इसकी समानता नहीं कर सकती और अंग्रेज़ी तो कदापि नहीं।” गुजरात (भरुच) में दूसरे शिक्षा सम्मेलन के मंच से बोलते हुए गाँधीजी ने 1917 में ही देश की राष्ट्रभाषा के लिए पाँच गुणों की आवश्यकताएँ बताई थीं जो अग्रलिखित हैं—

- वह भाषा सरकारी नौकरी के लिए आसान होनी चाहिए।
- उस भाषा के द्वारा भारत का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक कामकाज पूर्ण होना चाहिए।

- उस भाषा को ज्यादातर लोग बोलते हों।
- वह भाषा राष्ट्र के लिए आसान होनी चाहिए।
- उस भाषा का विचार करते समय क्षणिक या अस्थायी स्थिति पर जोर न दिया जाए।

उन्होंने कहा कि अंग्रेजी भाषा में उनमें से एक भी लक्षण नहीं है।... तब कौन-सी भाषा उन पाँच लक्षणों से युक्त है? यह माने बिना काम चल ही नहीं सकता कि हिंदी भाषा में ये सारे लक्षण मौजूद हैं। (संपूर्ण गाँधी वाङ्मय, पृ. 28) गाँधीजी राष्ट्रभाषा के पाँचों लक्षणों से युक्त भाषा हिंदी को मानते हैं। उनका कथन है, “हिंदी भाषा मैं उसे कहता हूँ जिसे उत्तर में हिंदू और मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी या फ़ारसी (उर्दू) लिपि में लिखते हैं। इस व्याख्या का थोड़ा विरोध किया गया।” (आधुनिक शिक्षा के आधार लेख)

वे आगे कहते हैं, “इन पाँच लक्षणों से युक्त हिंदी की होड़ करने वाली कोई और भाषा नहीं है। हिंदी के बाद दूसरा दर्जा बंगला का है। फिर भी बंगाली लोग बंगाल के बाहर हिंदी का ही उपयोग करते हैं। हिंदी भाषी जहाँ जाते हैं, वहाँ हिंदी ही का उपयोग करते हैं और हमसे किसी को अचंभा नहीं होता। हिंदी भाषी धर्मोपदेशक और उर्दू भाषी मौलवी सारे भारत में अपने भाषण हिंदी में ही देते हैं और अनपढ़ जनसाधारण उन्हें समझ लेते हैं। मैंने देखा कि ठेठ द्रविड़ प्रांत में भी हिंदी की आवाज़ सुनाई देती है। यह कहना ठीक नहीं है कि मद्रास में तो अंग्रेजी से ही काम चलता है। वहाँ भी मैंने अपना सारा काम हिंदी से चलाया है। सैकड़ों मद्रासी मुसाफ़िरों को मैंने दूसरे लोगों से हिंदी में बातचीत करते सुना है। इसके सिवा,

मद्रास के मुसलमान उर्दू बोलते हैं और उनकी संख्या सब प्रांतों में कुछ कम नहीं है।”

इसलिए उन्होंने सर्वप्रथम दक्षिण भारत में हिंदी का प्रचार शुरू कराया। 1918 में मद्रास के गोखले हाल में एनी बेसेंट की अध्यक्षता में हिंदी प्रचार शुरू हुआ। दक्षिण हिंदी प्रचार सभा की स्थापना की गई। हिंदी प्रचार एक राष्ट्रीय व्रत हो गया, जिसमें दक्षिण के नौजवान बड़ी संख्या में कूद पड़े।

सन् 1910 ई. में हिंदी साहित्य सम्मेलन स्थापित हो चुका था। गाँधीजी के इस साहसिक कदम के कारण हिंदी साहित्य सम्मेलन के इंदौर अधिवेशन सन् 1918 में गाँधीजी को सभापति बनाया गया। यह ऐतिहासिक सम्मेलन था। गाँधीजी ने इंदौर हिंदी साहित्य सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि दक्षिण भारत के तमिल, मलयालम, तेलुगु, कन्नड़ भाषी प्रदेशों में हिंदी के प्रचार की बहुत आवश्यकता है और उसके लिए धन-संग्रह की भी उन्होंने अपील की। गाँधीजी के अनुरोध पर इंदौर के महाराजा यशवंतराव होलकर द्वितीय और नगर सेठ हुकुमचंद ने दस-दस हजार रुपये हिंदी प्रचार कार्य की सहायता में दिए। जिसका उपयोग दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार के लिए किया गया। उसी अधिवेशन में यह प्रस्ताव भी पास हुआ कि दक्षिण भारत के छह युवक हिंदी सीखने के लिए प्रयाग भेजे जाएँ। इसके बाद ही नागपुर के हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में गाँधीजी की सलाह पर हिंदी प्रसार समिति, वर्धा का गठन किया गया। उसके पहले ही दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना मद्रास में की जा चुकी थी। इन बड़ी संस्थाओं की

प्रेरणा से दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार का तीव्र और सार्थक आंदोलन चला। गाँधीजी के नेतृत्व में कार्य करने वाले, देश की आज़ादी के लिए संघर्ष करने वाले लोगों के सामने, नेताओं और जनता के सामने यह समस्या थी कि स्वतंत्रता के बाद समूचे देश की राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय कार्यों में व्यवहार की भाषा क्या होगी? अतः हिंदी के समस्त प्रांतों में विशेषतः दक्षिण भारत में जो हिंदी शिक्षा के प्रति समर्पण और आकर्षण बढ़ा, वह हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की राष्ट्रीय भावना से अभिप्रेरित था। हिंदी सीखना और सिखाना राष्ट्र निर्माण का कर्तव्य बन गया। इन बड़ी संस्थाओं के कार्यक्षेत्र अत्यंत विस्तृत, व्यापक और हिंदी प्रचार-प्रसार और शिक्षा को सुव्यवस्थित करने के लिए मागदर्शक बनें। प्रदेशीय स्तर पर अनेक संस्थाएँ बनीं जिनमें प्रमुख हैं — हिंदी प्रचार सभा (1935 ई., हैदराबाद), मैसूर हिंदी प्रचार परिषद्, (1943 ई., बैंगलौर), महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, (1945 ई., पुणे), हिंदुस्तानी प्रचार सभा, (1942 ई., वर्धा), केरल हिंदी प्रचार सभा (तिरुवनन्तपुरम्), कर्नाटक हिंदी प्रचार सभा, (धारवाड़)। सन् 1926 में गाँधीजी आजीवन दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास के अध्यक्ष बने। उनका नाम सभापति के रूप में आने से समस्त राष्ट्र के नेताओं का सहयोग इसे मिला। इस संस्था में हिंदू के संपादक ए. रंगास्वामी आयरंग उपसभापति थे। दक्षिण भारत में हिंदी को लोकप्रिय बनाने का कार्य इसी संस्था ने तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषा-भाषी प्रदेशों में किया। अब यह राष्ट्रीय संस्था बन चुकी है जिसके संरक्षक प्रधानमंत्री होते हैं।

गाँधीजी ने यह प्रश्न भी बार-बार उठाया कि हमारा स्वराज कैसा होगा। फिर कहा, स्वभाषा और स्वराज एक-दूसरे से नाभि-नाल संबंध रखते हैं।

सन् 1916 में 16 फरवरी को गाँधीजी 'स्वदेशी की गरिमा' पर स्वभाषा-स्वाभिमान को जोड़कर बोले थे। यहाँ गाँधीजी के इस भाषण को उनके शब्दों में देना ही उचित होगा, "हिंदू शिक्षित वर्ग ने हिंदी को केवल संस्कृतमय बना दिया है। इसके कारण कितने ही मुसलमान उसे समझ नहीं सकते। लखनऊ के मुसलमान भाइयों ने उस उर्दू में फ़ारसी भर दी है और उसे हिंदुओं के समझने अयोग्य बना दिया है। ये दोनों केवल पंडिताऊ भाषाएँ हैं और उनको जनसाधारण में कोई स्थान प्राप्त नहीं है। मैं उत्तर में रह रहा हूँ हिंदू-मुसलमानों के साथ खूब मिला-जुला हूँ और मेरा हिंदी भाषा का ज्ञान बहुत कम होने पर भी मुझे उन लोगों के साथ व्यवहार रखने में ज़रा भी कठिनाई नहीं हुई है। जिस भाषा को उत्तरी भारत में आम लोग बोलते हैं। उसे चाहे उर्दू कहें या हिंदी, दोनों एक ही भाषा की सूचक हैं। यदि उसे फ़ारसी में लिखिए तो वह उर्दू नाम से पहचानी जाएगी और नागरी लिपि में लिखें तो वह हिंदी कहलाएगी। अब रहा लिपि का झगड़ा। कुछ समय तक मुसलमान लड़के फ़ारसी में अवश्य लिखेंगे और हिंदू अधिकतर देवनागरी में। एक दिन हिंदू-मुसलमानों के सारे संदेह दूर हो जाएँगे और तब जिस लिपि का जोर होगा वही राष्ट्रीय लिपि हो जाएगी।"

महात्मा गाँधीजी हिंदी को एक सीमित क्षेत्र की भाषा बनाए रखने के पक्ष में भी नहीं थे। वे इसे पूरे

देश की भाषा और राष्ट्र को जोड़ने वाली भाषा के रूप में विकसित करने के पक्ष में थे। इसीलिए उन्होंने इसे 'राष्ट्रभाषा' की संज्ञा दी थी। इंदौर के अपने भाषण में उन्होंने कहा था, "यदि हिंदी भाषा की भूमि सिर्फ उत्तर प्रांत होगी तो साहित्य का प्रदेश संकुचित रहेगा। हिंदी भाषा राष्ट्रीय भाषा होगी तो साहित्य का विस्तार भी राष्ट्रीय होगा। जैसे भाषक, वैसी भाषा।" यही नहीं, गाँधीजी प्रांतीय भाषाओं के विकास को भी आवश्यक मानते थे। उन्होंने कहा था, "मेरा नम्र, लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम हिंदी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी प्रांतीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देंगे, तब तक स्वराज की सब बातें निरर्थक हैं।"

गाँधीजी ने गुजराती में *नवजीवन* का प्रकाशन किया। गुजराती *नवजीवन* के दो साल बाद उन्होंने 19 अगस्त, 1921 को हिंदी *नवजीवन* का भी प्रकाशन शुरू किया। अपने प्रथम अंक में ही गाँधीजी ने लिखा 'यद्यपि मुझे मालूम है कि *नवजीवन* को हिंदी में प्रकाशित करना कठिन है तथापि मित्रों के आग्रहवश होकर और साथियों के उत्साह से *नवजीवन* का हिंदी अनुवाद निकालने की धृष्टता मैं करता हूँ। उन्होंने आगे लिखा "जिस भाषा को करोड़ों हिंदू-मुसलमान बोल सकते हैं वही अखिल भारतवर्ष की सामान्य भाषा हो सकती है।

इसलिए वे कहते हैं, "सारे हिंदुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए वह तो हिंदी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए। हिंदू-मुसलमान के संबंध ठीक रहें, इसलिए बहुत से हिंदुस्तानियों का इन दोनों लिपियों को जान लेना

ज़रूरी है। ऐसा होने से हम आपस के व्यवहार से अंग्रेज़ी को निकाल सकेंगे। और यह सब किसके लिए ज़रूरी है? हम जो गुलाम बन गए हैं उनके लिए। हमारी गुलामी की वजह से देश की प्रजा गुलाम बनी है। अगर हम गुलामी से छूट जाएँ, तो प्रजा छूट ही जाएगी।" (*हिंद स्वराज*) हमें ध्यान देना होगा कि यह बात गाँधी 1909 ई. में कह रहे हैं — सारे हिंदुस्तान के लिए जो भाषा होनी चाहिए वह तो हिंदी ही होनी चाहिए। गाँधीजी के इस कथन को एक 'पाठ' मानकर पढ़ते हैं तो इस कथन के अनेक अर्थों में से एक अर्थ और निकलता है कि हिंदी से प्रेम भाषा-प्रेम के साथ देश-प्रेम है — विभिन्नता में एकता लाने की ध्वनि है और 'स्वराज' का बड़ा अर्थ भी इसमें समाहित है। गाँधीजी के कथन दिखाई सीधे-सपाट देते हैं। लेकिन उनकी पढ़त-प्रक्रिया जटिल एवं बहुस्तरीय है। इस पाठ का अर्थ बाहुल्य अंग्रेज़ी भाषा की गुलामी से जुड़े संदर्भ में है, पाठ के 'विमर्शों' में है। अंग्रेज़ी की गुलामी से मुक्त होकर हिंदी लाने के पाठ में गाँधी के अभिप्रायों का विचारधारात्मक ढाँचा है जिसे आज बहुत सावधानी से समझने की ज़रूरत है।

गाँधीजी ने 5 फरवरी, 1916 ई. में काशी नागरी प्रचारिणी सभा के वार्षिकोत्सव में भाग लिया और हिंदी के महत्व पर भाषण दिया। गाँधीजी ने महाराजाओं और भाइयों को संबोधित करते हुए कहा कि, "मैं बहुत ही शर्मिन्दा हूँ कि मैं आपके सामने हिंदी में अच्छी तरह बोल नहीं सकता। आप जानते हैं कि मैं दक्षिण अफ्रीका में रहता था। वहीं अपने हिंदी भाइयों के साथ काम करते-करते थोड़ी बहुत हिंदी सीख सका हूँ। इसलिए आप लोग मेरी

भूलों को क्षमा करेंगे।' आप यहाँ यह अनुभव कर सकते हैं कि गुजराती भाषी गाँधी का हिंदी-प्रेम एक अद्भुत तरह का प्रेम था।

गाँधीजी ने आगे कहा, "मैं नहीं जानता था मुझे इस सभा में बोलना पड़ेगा। मैं व्याख्यान देने के लायक भी नहीं हूँ। मुझसे कहा गया कि कुछ कहो। यद्यपि कुछ कहना मेरी शक्ति से बाहर है तो भी दो-चार बातें मैं आपको सुनाता हूँ जो इस समय मेरे खयाल में आई हैं। आप शायद यह जानते हैं कि मेरे साथ तीस-पैंतीस स्त्री-पुरुष हैं। उन सबकी प्रतिज्ञा है कि बराबर हिंदी का अभ्यास करेंगे।" इस सभा में गाँधीजी ने कहा, "इस सभा के जो अधिकारी वकील हैं उनसे मैं पूछता हूँ कि आप अदालत में अपना काम अंग्रेजी में चलाते हैं या हिंदी में? यदि अंग्रेजी में चलाते हैं तो मैं कहूँगा कि हिंदी में चलाएँ। जो युवक पढ़ते हैं उनसे भी मैं कहूँगा कि वे इतनी प्रतिज्ञा करें कि आपस का पत्र-व्यवहार हिंदी में करेंगे।"

वे आगे कहते हैं, नागरी प्रचारिणी सभा का कर्तव्य है कि जो पुस्तकें डॉक्टर जगदीश चन्द्र बसु ने अंग्रेजी में लिखी हैं उनका वह हिंदी में अनुवाद करें। जर्मनी में जो विद्वतापूर्ण पुस्तकें तैयार होती हैं, अंग्रेजी में दूसरे ही सप्ताह उनका अनुवाद हो जाता है, इसी से वह भाषा प्रौढ़ है। हिंदी में भी ऐसा ही होना चाहिए। लोगों को अपनी भाषा की असीम उन्नति करनी चाहिए। क्योंकि सच्चा गौरव उसी भाषा को प्राप्त होगा, जिससे अच्छे-अच्छे विद्वान जन्म लेंगे। ...जिस भाषा में तुलसीदास जैसे कवि ने कविता की हो वह अवश्य पवित्र है और उसके सामने कोई भाषा

नहीं ठहर सकती। हमारा मुख्य काम हिंदी सीखना है, पर तो भी हम अन्य भाषाएँ सीखेंगे। अगर हम तमिल सीख लेंगे तो तमिल बोलने वालों को भी हिंदी सिखा सकेंगे।" (गाँधीजी का व्याख्यान—हिंदी का महत्व)

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के उद्घाटन समारोह (दिनांक 04.02.1916) में गाँधीजी ने 'स्वभाषा—स्वराज' पर ऐतिहासिक भाषण दिया। इस भाषण में गाँधीजी ने भारतीय संस्कृति, परंपरा के संदर्भों को उठाते हुए विषय पर चर्चा की। ध्यान में रखना होगा कि गाँधीजी के लिए आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति का केंद्रीय मूल्य थी। उन्हें ध्यान देना होगा कि विदेशी भाषा में बोलना स्वदेश में 'अप्रतिष्ठा और शर्म की बात है।' फिर अंग्रेजी में झाड़े गए भाषण हृदय नहीं छूते केवल बुद्धि पर धौंस जमाते हैं। "मैं गत दिसंबर में राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन में मौजूद था। वहाँ बहुत अधिक तादाद में लोग इकट्ठे हुए थे। आपको ताज्जुब होगा कि मुंबई के तमाम श्रोता उन भाषणों से प्रभावित हुए जो हिंदी में दिए गए थे। ध्यान दीजिए यह मुंबई की बात है बनारस की नहीं। जहाँ सभी लोग हिंदी बोलते हैं। मुंबई प्रांत की (सिंधी-गुजराती-मराठी) भाषाओं में उतना फर्क नहीं, जितना और जैसा कि अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं में है।"

इसी तारतम्य में गाँधीजी ने 29 दिसंबर, 1916 में लखनऊ में अखिल भारतीय एक भाषा और एक लिपि सम्मेलन की अध्यक्षता की। इसमें गाँधीजी ने कहा कि, "लोग बाहर जाकर हिंदी पढ़ाएँ। बाहरी लोगों को हिंदी पढ़ाने का सुभीता और यथोचित

प्रबंध करें। जिन प्रांतों में हिंदी का प्रचार कम है, वहाँ हिंदी पढ़ाने वालों की बड़ी कमी है। मैं स्वयं हिंदी सीखना चाहता था। पर अहमदाबाद में कोई हिंदीज्ञाता शिक्षक न मिला। मिला बेचारा एक गुजराती भाषा-भाषी, जिसने 15-20 वर्ष काशी में रहकर टूटी-फूटी हिंदी सीखी थी। उसी से मैंने हिंदी सीखी।” यहाँ गाँधीजी के सभापतित्व में यह प्रस्ताव पारित हुआ कि देवनागरी लिपि और हिंदी भाषा का सार्वदेशिक प्रचार होना चाहिए। देशहित और एक्य स्थापना के लिए इसकी बड़ी ज़रूरत है। मद्रास के श्रीयुत रामस्वामी अय्यर और रंगास्वामी आयंगर तक ने इसका अनुमोदन किया।

गाँधीजी की ही प्रेरणा से 1920 में ‘हिंदुस्तानी’ भारतीय कांग्रेस की भाषा बनी। कांग्रेस द्वारा अपनाई गई हिंदुस्तानी अंग्रेजों द्वारा प्रचलित हिंदुस्तानी से भिन्न थी। दोनों की न केवल भूमिकाएँ अलग थी, बल्कि दोनों में अवधारणात्मक अंतर था। डॉ. ग्रियर्सन तो *दि लैंग्वेजिज ऑफ़ इंडिया* पुस्तक में इतना ही कह सके थे कि, ‘वर्नाक्यूलर’ के तौर पर ‘हिंदुस्तानी’ पश्चिमी हिंदी की एक बोली है।’

अपने इस दूसरे स्वतंत्रता आंदोलन को जारी रखते हुए 1918 में गाँधीजी ने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के संबंध में रवींद्रनाथ ठाकुर को उनकी राय जानने के लिए पत्र लिखा। इतना ही नहीं, तिलक की अध्यक्षता में 30 दिसंबर, 1917 में वह अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा सम्मेलन में हिंदी को भारत की सामान्य भाषा बनाने की सिफ़ारिश कर चुके थे। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए गाँधीजी का संदेश कभी धीमा नहीं पड़ा। इसका प्रमाण है कि 30 मार्च, 1920 में गाँधीजी ने

विजयनगरम की सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने की अपील की। गाँधीजी के लिए कहना चाहिए कि राष्ट्रभाषा की समस्या बहुजातीय राष्ट्र के गठन और विकास की ऐतिहासिक-राजनीतिक समस्या बनी रही और वे हिंदी तथा भारतीय भाषाओं पर साम्राज्यकारियों द्वारा लादी गई अंग्रेजी भाषा का विरोध करते रहे।

अपने इस दूसरे स्वतंत्रता आंदोलन में गाँधीजी को उन लोगों से लोहा लेना पड़ा जो कहते थे कि हिंदी कोई भाषा नहीं है और देवनागरी घोर अवैज्ञानिक लिपि है। जो भी है, उसे रोमन लिपि में लिखा जाए। सच बात यह है कि अंग्रेजी सरकार स्वयं देवनागरी लिपि लागू नहीं करना चाहती थी। लेकिन गाँधीजी ने अंग्रेजी साम्राज्यवाद की नीतियों को अहिंसा-सत्य-सत्याग्रह के बल पर चलने नहीं दिया। गाँधीजी ने हिंदुस्तानी और राष्ट्रभाषा को लेकर जो संघर्ष-संग्राम अंग्रेजी साम्राज्यवाद से किया है, वह स्वर्णाक्षरों में लिखकर याद करने योग्य है। भूलना न होगा कि हिंदी से गाँधीजी का आशय संस्कृतिनष्ठ हिंदी से नहीं था, उस हिंदी से था जिसे आम आदमी की बोलचाल की भाषा कहते हैं। गाँधीजी ने कहा, “मैं हिंदी और उर्दू का शत्रु नहीं हो सकता। लेकिन मैंने अनुभव किया है कि सामान्य व्यक्ति की भाषा यानी भारत की राष्ट्रभाषा देवनागरी तथा उर्दू लिपियों में लिखी जाने वाली सरल हिंदी तथा सरल उर्दू का सम्मिश्रण अर्थात् हिंदुस्तानी हो सकती है।”

लेकिन गाँधीजी की भाषा नीति में प्रांतीय भाषाओं को दबाने-सताने के भाव का लेशमात्र भी स्थान नहीं है। सन् 1935 में काका साहेब कालेलकर

ने गाँधीजी से कहा कि लोगों में यह अफ़वाह फैली हुई है कि 'हिंदी प्रचार का उद्देश्य प्रांतीय भाषाओं का दमन है। तब गाँधीजी ने साहित्य सम्मेलन के मंच से घोषित किया, "मेरा कहना बराबर यही रहा है कि प्रांतीय भाषाओं को ज़रा भी आहत हम नहीं करना चाहते, उनका दमन या नाश करना तो दूर की बात है।"

उनकी यह सोच उनके द्वारा संपादित *द इंडियन ओपीनियन* अखबार में नज़र आती है जिसे उन्होंने अंग्रेज़ी के साथ गुजराती, हिंदी और तमिल में भी प्रकाशित किया। तब वे बहुभाषी भारत के अनुरूप भाषाई प्रयोग कर रहे थे और उनका यह निष्कर्ष था कि अंग्रेज़ी में काम करने से हम गुलामी को ही मज़बूत करते हैं।

यह विचार भी गाँधीजी के अनुभव से ही पैदा हुआ था कि भाषाओं के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन हो जिससे प्रदेशों का कामकाज वहाँ की प्रांतीय भाषाओं में चलाया जा सके। गाँधीजी के इसी विचार के आधार पर कांग्रेस कमेटियों का गठन जातीय इलाकों को ध्यान में रखकर किया गया। स्वाधीनता प्राप्त हो जाने के बाद गाँधीजी ने कहा, "प्रांतीय भाषाओं को अपना पूर्ण विकास करना है तो भाषा के आधार पर प्रांतों का पुनर्गठन आवश्यक है। हिंदुस्तानी राष्ट्रभाषा होगी, लेकिन वह प्रांतीय भाषाओं की जगह न लेगी। वह प्रांतों में शिक्षा का माध्यम न होगी, अंग्रेज़ी शिक्षा का माध्यम हो, इसका सवाल ही नहीं है। हिंदुस्तानी का उद्देश्य यह होगा कि वे लोगों को महसूस कराए कि वे भारत के अभिन्न अंग हैं। उनके लिए हम सब हिंदुस्तानी हैं।"

गाँधीजी की पहल पर ही 1935 में कानपुर के कांग्रेस अधिवेशन में उसके विधान में एक संशोधन किया गया कि अखिल भारतीय कार्यवाही हिंदुस्तानी में चलाई जाएगी। यदि कोई सदस्य हिंदुस्तानी न बोल सके तो प्रांतीय भाषा या अंग्रेज़ी का प्रयोग कर ले।

1937 में पहली बार कुछ प्रांतों में कांग्रेस की सरकार बनी तो उन्होंने *हरिजन* में लिखा, हमें शिक्षा माध्यम को तत्काल बदल देना चाहिए। "आहिस्ता आहिस्ता करेंगे।" यह बहाना नहीं चलने दिया जाएगा। यदि हम ऐसा कर डालें तो थोड़े ही समय में पुस्तकें और अध्यापक दोनों तैयार मिलेंगे। एक ही वर्ष में सारा परिवर्तन हो जाएगा। गाँधीजी अंग्रेज़ी को प्रांतीय भाषाओं के विकास में रोड़ा मानते थे। जब तक अंग्रेज़ी का वर्चस्व रहेगा, ये भाषाएँ हरगिज़ पनप नहीं सकतीं। अंग्रेज़ी क्षेत्रीय भाषाओं को एक-दूसरे के समीप आने से भी रोकती है। इसी विचार को व्यक्त करते हुए उन्होंने 1937 में *हरिजन सेवक संघ* के 10 अप्रैल के अंक में लिखा था, "अंग्रेज़ी को प्रांतीय भाषाओं का या हिंदी का स्थान नहीं देना चाहिए। अगर अंग्रेज़ी ने यहाँ के लोगों की भाषाओं को निकाल न दिया होता तो प्रांतीय भाषाएँ आज आश्चर्यजनक रूप से समृद्ध होती... मैं भाषा पर इतना जोर देता हूँ कि राष्ट्रीय एकता हासिल करने का यह एक बहुत ज़बरदस्त साधन है। जितना दृढ़ इसका आधार होगा, उतनी ही प्रशस्त हमारी एकता होगी।"

इसलिए गाँधीजी ने भारत के स्वतंत्र होते ही 21 सितंबर, 1947 को *हरिजन* में लिखा था कि अंग्रेज़ों को शासन से हटाकर राज्यों में राष्ट्रभाषा हिंदी और भारतीय भाषाओं को कार्यान्वित करने के लिए ऐसे

कर्मचारी ही नियुक्त किए जाएँ जो प्रांतीय भाषाओं और राष्ट्रभाषा हिंदी के जानकार हों। इसे कार्यान्वित करने में जितना विलंब होगा, उसी अनुपात से राष्ट्र की सांस्कृतिक क्षति होगी। प्रांतीय भाषाओं को समृद्ध और पुनर्जीवित करना होगा। यह कहना कि कचहरियों, स्कूलों और सरकारी कार्यालयों में यह परिवर्तन लाने में समय लगेगा, सही नहीं है। सरकारी विभागों में प्रांतीय भाषाओं को चलाना तुरंत आवश्यक है। अंतरप्रांतीय भाषाएँ हिंदी के बिना भारत की भाषा नहीं हो सकती हैं। मैं कहता हूँ कि सांस्कृतिक वंचक के रूप में अंग्रेजी को हमें उसी तरह निकाल बाहर करना है, जिस तरह हमने अंग्रेजों के राजनीतिक शासन को सफलतापूर्वक उखाड़ फेंका है। हम अंग्रेजी के गुलाम बने हुए हैं। अंग्रेजी के गुलाम नेताओं को पहले आजाद करना ही पड़ेगा, उसके बाद ही अंग्रेजी की गुलामी से भारत का उद्धार हो सकेगा। गाँधीजी ने लिखा था कि यदि हम अपने देश के बच्चों को भारतीय भाषाओं के माध्यम से सब विषय की उच्च शिक्षा नहीं दे सके और हिंदी को राष्ट्रभाषा नहीं बना सके तो देश की स्वतंत्रता निरर्थक हो जाएगी।

इस प्रकार गाँधीजी की स्पष्ट नीति का ही यह परिणाम था कि स्वतंत्र भारत में नागरी लिपि में लिखित हिंदी को संघ की राष्ट्रभाषा की मान्यता दी गई। वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति हो या मद्रास की दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा हो, गाँधीजी ने गैर हिंदी भाषा-भाषी प्रांतों में हिंदी संस्थाओं का जाल बिछा दिया और उसके माध्यम से हिंदी की शिक्षा व्यवस्था का जो लोकव्यापी आंदोलन चलाया,

उसका परिणाम था कि सारे देश में हिंदी राष्ट्रभाषा के रूप में सर्वमान्य हुई।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा— 2005 — गाँधीजी की भाषा नीति का प्रतिबिंब

इस परिदृश्य में यदि हम राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005 का अवलोकन करें तो हम उसमें गाँधीजी के भाषा चिंतन को कार्यरूप में परिणित होता देख सकते हैं। इसके “अध्याय 3 ‘पाठ्यचर्या के क्षेत्र’ शीर्षक भाग में भाषा शिक्षा और शिक्षण की जो रूपरेखा दी गई है, वह गाँधीजी की भाषा नीति को प्रतिबिंबित करती है। यहाँ कहा गया है कि —

- भाषा शिक्षण बहुभाषिक होना चाहिए, केवल कई भाषाओं के शिक्षण के ही अर्थ में नहीं, बल्कि रणनीति तैयार करने के लिहाज से भी ताकि बहुभाषिक कक्षा को एक संसाधन के तौर पर प्रयोग में लाया जाए।
- बच्चों की घरेलू भाषा(एँ) विद्यालय में शिक्षण का माध्यम होनी चाहिए।
- अगर विद्यालय में उच्चतर स्तर पर बच्चों की घरेलू भाषा(ओं) में शिक्षण की व्यवस्था न हो, तो प्राथमिक स्तर की विद्यालय शिक्षा अवश्य घरेलू भाषा(ओं) के माध्यम से ही दी जाए। यह आवश्यक है कि हम बच्चे की घरेलू भाषा को सम्मान दें। हमारे संविधान की धारा 350 (क) के मुताबिक, ‘प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की

पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा।’

- बच्चे प्रारंभ से ही बहुभाषिक शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे। त्रिभाषा फ़ॉर्मूले को उसके मूलभाव के साथ लागू किए जाने की ज़रूरत है ताकि वह बहुभाषी देश में बहुभाषी संवाद के माहौल को बढ़ावा दे।
- गैर-हिंदी भाषी राज्यों में, बच्चे हिंदी सीखते हैं। हिंदी प्रदेशों के मामले में, बच्चे वह भाषा सीखें जो उस इलाके में नहीं बोली जाती है। इन भाषाओं के अलावा आधुनिक भारतीय भाषा के रूप में संस्कृत का अध्ययन भी शुरू किया जा सकता है। बाद के स्तरों पर शास्त्रीय और विदेशी भाषाओं से परिचय कराया जा सकता है।

उपसंहार

इस प्रकार हम देखते हैं कि गाँधीजी ने राष्ट्रभाषा के विकास के साथ प्रांतीय भाषाओं के साथ उसके समन्वयन की भी रूपरेखा तैयार कर दी थी, जिसे अपनाकर हम आज की भारतीय भाषाओं के आपसी विवादों और इनके फलस्वरूप अंग्रेज़ी के बढ़ते प्रभुत्व पर प्रहार कर सकते हैं। गाँधी की भाषा-दृष्टि एक परिस्थिति की उपज थी। गाँधीजी ने हिंदी को भारतीय स्वतंत्रता की वाणी की संज्ञा दी थी। वे हिंदी के प्रयोग पर बल देते थे। यदि किसी भाषा का प्रयोग नहीं होगा तो वह कैसे लोकप्रिय बनेगी, उनका ऐसा सोचना था। आज हम देखते हैं कि सर्वत्र अंग्रेज़ी का बोलबाला है, क्योंकि हम अपनी भाषा का प्रयोग नहीं करते। क्षणिक स्वार्थ के लिए अंग्रेज़ी का ही प्रयोग कर रहे हैं, फिर हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ कैसे आगे बढ़ सकती हैं?

साथ ही, गाँधीजी के राष्ट्रभाषा संबंधी चिंतन को दो चरणों में बाँटकर देखने की ज़रूरत है। इसके अनुसार पहला चरण *हिंद स्वराज* अर्थात् 1909 से लेकर 1936 तक का है, जिसमें गाँधी लगातार हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की बात करते रहे, लेकिन 1936 के बाद वे आश्चर्यजनक ढंग से हिंदुस्तानी की वकालत करने लगे। *हरिजन* के अक्टूबर 1936 के अंक में उन्होंने एक लेख लिखा — ‘हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू’। अपने मत को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा, “इस हिंदुस्तानी के एक-एक शब्द के अनेक पर्याय होने चाहिए ताकि यह विभिन्न प्रांतीय भाषाओं से समृद्ध और विकासोन्मुख राष्ट्र की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। बंगालियों या दक्षिण भारत के लोगों के सामने बोली जाने वाली हिंदुस्तानी में संभवतः संस्कृत से लिए गए शब्दों का अधिक प्रयोग होगा। वही भाषण जब पंजाब में दिया जाएगा तो उसमें अरबी-फ़ारसी शब्दों की बहुलता होगी। यही बात उस श्रोता वर्ग के संदर्भ में लागू होगी जिसमें मुसलमानों की प्रमुखता हो, क्योंकि वे संस्कृत से लिए हुए बहुत से शब्द नहीं समझ सकते।” यह एक व्यावहारिक सोच थी और है और इस पर अमल किया जाना चाहिए।

कुछ लोग आज कह रहे हैं कि भारत के लिए भाषा का प्रश्न आवश्यक नहीं है। आज आर्थिक-राजनीतिक प्रश्न आवश्यक है। पहले उनका हल होना चाहिए। अंग्रेज़ी के संपर्क भाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा रहने से प्रादेशिक भाषाओं को अपना संपूर्ण प्राप्य संभवतः मिल गया है। उत्तर आधुनिक समय में अंग्रेज़ी अपरिहार्य भाषा कही जा रही है, क्योंकि यही

भाषा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तक पहुँचने का सीधा माध्यम है। आज नेतृत्व करने वालों के लिए भारतीय भाषाएँ नहीं, अंग्रेज़ी आवश्यक है। ये सभी तर्क हमें गाँधीजी की राह से भटकाने के लिए दिए जा रहे हैं। आज के भारत की परीक्षा करनी अनिवार्य है कि सत्तर सालों में हमने भारत को कितना अधिक गुलाम बनाया है। थोड़ा इसका जायज़ा भी लें कि वे किस तरह की ताकतें हैं जो भारत को गुलाम बनाए रखने से

फल-फूल रही हैं। हम उन्हें हरायें और अपनी भाषा के प्रति गंभीरता इसका सबसे बड़ा उपकरण हो सकता है।

भाषा को सशक्त बनाने के लिए *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005* में गाँधीजी की इन नीतियों को एक सकारात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की गई है जो राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त करने में अपना योगदान दे रही है।

संदर्भ

- गाँधी, एम. के. 1903. *इंडियन ओपीनियन* (6 जून). दक्षिण अफ्रीका.
 ———. 1956. *थॉट्स ऑन नेशनल लैंग्वेज*. नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद.
 ———. 2011. *हिन्द स्वराज*. नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद, गुजरात.
नवजीवन. 1921. नवजीवन मुद्रणालय., अहमदाबाद, गुजरात.
यंग इंडिया. अंक 1921, 1924, 1925. अहमदाबाद, गुजरात.
 वियोगी हरि (संपादक). 1937. *हरिजन सेवक संघ*. अप्रैल अंक. किंग्सवे, दिल्ली.
 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.
 शास्त्री, आर. वी. *हरिजन*. अंक 1938, 1947. पूना (पुणे), महाराष्ट्र.
<https://www.gandhiheritageportal.org/hi/the-collected-works-of-mahatma-gandhi>

अध्यापक शिक्षा एवं अध्यापकों का निरंतर पेशेवर विकास

उमेश चमोला*

इस लेख में अध्यापकों के पेशेवर विकास से जुड़े तमाम मुद्दों एवं प्रयासों का उल्लेख किया गया है। जिसमें अध्यापकों के पेशेवर विकास के संदर्भ में दार्शनिक पृष्ठभूमि, अध्यापक पेशे को अपनाना एवं निरंतर विकास, अध्यापकों के पेशेवर विकास के सूचक, अध्यापकों का पेशेवर विकास एवं पाठ्यचर्या, इंटर्नशिप कार्यक्रम, शोध, नेतृत्वशीलता, क्षमता अभिवर्धन कार्यक्रम, सूचना एवं संप्रेषण तकनीक, प्रबंधन, मूल्यांकन और अन्य मसलों सहित अध्यापक शिक्षा के पृथक ढाँचे पर व्यावहारिक एवं विस्तृत उल्लेख किया गया है।

प्रस्तावना

अध्यापक बनने की प्रक्रिया यांत्रिक नहीं है अर्थात् किसी वस्तु, जैसे— साबुन या मशीन बनाने की प्रक्रिया जैसी नहीं है। एक बार वस्तु ने जो आकार ले लिया, वही उसका अंतिम रूप है। अध्यापक बनने की प्रक्रिया लचीली है जो बदलती हुई परिस्थितियों में नए-नए रूपों को जन्म देती है। शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की शिक्षा धातु और आ प्रत्यय से मिलकर बना है। अर्थात् सीखने-सिखाने की प्रक्रिया। इसी संदर्भ में अध्यापक शब्द का अर्थ हुआ सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को संपादित करने वाला। चूँकि सीखने-सिखाने की प्रक्रिया लगातार चलती रहती है। अतः अध्यापकों के पेशेवर विकास की आवश्यकता निरंतर बनी रहती है।

अध्यापकों के पेशेवर विकास के संदर्भ में दार्शनिक पृष्ठभूमि

प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू के अनुसार जन्म के समय मानव का मस्तिष्क कोरा होता है। इसमें अंतर्निहित ज्ञान शून्य होता है। शिक्षा के माध्यम से उसके कोरे मस्तिष्क में ज्ञान को अंकित कराया जाता है। इब्नसिना ने अरस्तू के इस विचार को विस्तारित करते हुए कहा कि मानव के कोरे मस्तिष्क में क्षमताएँ शिक्षा के माध्यम से ही जाग्रत होती हैं। इनमें ज्ञान, निरीक्षण और तर्क की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। अरस्तू के कोरे मस्तिष्क का विचार शिक्षा में कई वर्षों तक मान्य रहा। आधुनिक मनोविज्ञान और जीवविज्ञान के अनुसार बच्चे का मस्तिष्क कोरी स्लेट जैसा नहीं होता, अपितु उसकी कोशिकाओं में जीन के माध्यम से अंतर्निहित शक्तियाँ पहले से ही मौजूद रहती हैं। एक

अध्यापक और विद्यार्थी में अंतर्निहित इन शक्तियों को पहचानने की क्षमता होनी चाहिए। यह तभी संभव है जब अध्यापक अपने को अध्यापक बनने की प्रक्रिया में सम्मिलित पाता है और पेशेवर विकास के लिए हमेशा तैयार रहता है। जब वह अपने में अंतर्निहित शक्तियों को पहचानने की क्षमता का विकास करता है। वह विद्यार्थी को अधिगम का ऐसा वातावरण देने का प्रयास करता है, जिसमें विद्यार्थियों की शक्तियों को प्रस्फुटित होने का अवसर मिले। स्वामी विवेकानंद के अनुसार एक अध्यापक को विद्यार्थियों में ज्ञान की जाग्रति के संचारक और संवाहक के रूप में कार्य करना चाहिए।

भारतीय दर्शन में 'असतो मा सद्ग' (असत्य से सत्य की ओर ले जाना) तथा 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' (अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाना) कहकर शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला गया है। प्रश्न उठता है तमस से ज्योति तथा असत्य से सत्य की ओर ले जाने में विद्यार्थी को प्रेरित करने का दायित्व किसके ऊपर है? स्पष्ट है कि यह अध्यापक ही है जिसे भारतीय दर्शन में ईश्वर से ऊपर का दर्जा देकर गुरु के रूप में विभूषित किया गया है। गुरु वही व्यक्ति कहलाने का अधिकारी होगा जो गुरुता (श्रेष्ठता) को प्राप्त करेगा और गुरुता को बनाए रखने में सफल होगा। गुरुता को प्राप्त करना और गुरुता को बनाए रखना, इन दोनों प्रक्रियाओं को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी अध्यापक बनने की प्रक्रिया और अध्यापकों के निरंतर पेशेवर विकास के रूप में विश्लेषित किया जाना उचित होगा। भारतीय दर्शन में अध्यापक द्वारा

अपने विद्यार्थी से हार जाने में गौरवांविह होने की स्थिति अध्यापक के पेशेवर विकास की प्रक्रिया के शीर्ष बिंदु के रूप में आख्यायित है।

जब एक अध्यापक, पेशेवर विकास की सतत प्रक्रिया में अपने को सम्मिलित पाता है तो उसके विचारों में ठहराव के बजाय ग्राह्यता आ जाती है। वह नए-नए विचारों को ग्रहण करने और उनके विश्लेषण में स्वयं को आनंदित महसूस करता है। वह अहंकार शून्य होकर सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में विद्यार्थी और अपने को सहभागी के रूप में स्वीकार करने लगता है। वह बच्चों को स्व-अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करने लगता है। वह स्वयं चिंतन करता है। विद्यार्थियों को भी चिंतन करने और कई तरह के सवाल-जवाब करने को प्रेरित करता है और इस हेतु अवसर भी प्रदान करता है।

अध्यापक पेशे को अपनाना एवं निरंतर विकास

जिस दिन व्यक्ति अपनी आजीविका के रूप में अध्यापन पेशे का चयन करता है, उसी दिन वह अध्यापक संबंधी पेशेवर विकास की पहली सीढ़ी में कदम रख लेता है। इसके बाद वह अध्यापन से संबंधित डिप्लोमा या डिग्री कोर्स में प्रवेश की तैयारी करता है। इस तैयारी के बहाने वह अध्यापन के विविध पक्षों को समझने लगता है। अध्यापन से संबंधित डिप्लोमा या डिग्री कोर्सों में प्रवेश पाने के बाद वह अध्यापन से जुड़ी बारीकियों को समझने लगता है। इसके बाद अध्यापक के रूप में कार्य करने के दौरान वह डिप्लोमा या डिग्री कोर्स में अर्जित सैद्धांतिक ज्ञान को व्यवहार में उतारने का प्रयास करता है। अध्यापक बनने की प्रक्रिया अध्यापक के

रूप में नौकरी पाने के उपरांत समाप्त नहीं हो जाती। यहाँ से यह प्रक्रिया नए आयामों को प्राप्त कर आगे बढ़ती है। इस प्रकार अध्यापकों के पेशेवर विकास में निरंतरता एक स्वाभाविक गुण है।

अध्यापकों के पेशेवर विकास के सूचक

अध्यापक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन. सी. एफ. टी. ई.)— 2009 अध्यापकों के पेशेवर अधिगम और विकास के प्रमुख लक्ष्यों पर प्रकाश डालती है। इसके अनुसार —

- अध्यापक को खोजबीन, इसके लिए चिंतन-मनन और विकास की स्वयं की परिपाटी विकसित करनी चाहिए।
- उसे शैक्षिक अनुशासन या विद्यालयी पाठ्यचर्या के अन्य क्षेत्रों के बारे में अपने ज्ञान को गहन बनाने के लिए सतत प्रयासशील होना चाहिए।
- अध्यापक को विद्यार्थियों और उनकी शिक्षा पर शोध और चिंतन करना चाहिए।
- अध्यापक को शैक्षिक और सामाजिक मुद्दों को समझने और अद्यतन करने की प्रवृत्ति का विकास करना चाहिए।
- अध्यापक को शिक्षा / अध्यापन से पेशेवर रूप से जुड़ी अन्य भूमिकाओं के लिए तैयारी करनी चाहिए, जैसे— पाठ्यचर्या विकास, साहित्य लेखन, प्रशिक्षण आदि।
- अध्यापकों को कार्यस्थल पर अन्य लोगों, विशिष्ट विषयों के क्षेत्रों में काम कर रहे अध्यापकों, शिक्षाविदों और समाज के बुद्धिजीवियों से परस्पर वैचारिक साझीदारी को सतत रूप से करना चाहिए।

उपरोक्त बिंदु अध्यापकों के पेशेवर अधिगम और विकास के प्रमुख लक्ष्यों को इंगित करने के साथ ही एक अध्यापक के लिए अपने मूल्यांकन के बिंदु भी हैं कि उसके पेशेवर विकास की प्रक्रिया गतिमान है या ठहर गई है? यदि वह अनुभव करता है कि इन बिंदुओं को मार्गदर्शक के रूप में वह अपने शिक्षण में लागू कर पा रहा है तो उसके पेशेवर विकास की प्रक्रिया जारी है, अन्यथा इस प्रक्रिया में ठहराव आ गया है। क्षमता अभिवर्धन कार्यक्रमों का उद्देश्य इसी ठहराव को समाप्त करना होना चाहिए। अतः अध्यापकों के पेशेवर अधिगम और विकास के प्रमुख लक्ष्यों से संबंधित ये बिंदु अध्यापकों के पेशेवर विकास के सूचक भी कहे जा सकते हैं।

अध्यापकों का पेशेवर विकास और पाठ्यचर्या के तत्व

अध्यापकों के पेशेवर विकास में सेवा-पूर्व अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों तथा सेवारत शिक्षा कार्यक्रमों की पाठ्यचर्या का विशिष्ट स्थान होता है। यह पाठ्यचर्या विद्यार्थी-अध्यापकों के भावी शैक्षिक जीवन की दिशा को निर्धारित करती है। इस पाठ्यचर्या की तुलना हम रेशम कीट की विकास विषयक प्रक्रिया से कर सकते हैं। एक बार एक व्यक्ति ने रेशम के खोल से रेशम कीट के तितली रूप के बाहर आने की प्रक्रिया का अवलोकन किया। उसने देखा किस प्रकार रेशम कीट का तितली रूप खोल से बाहर आने के लिए संघर्ष कर रहा है। उसने तितली के इस संघर्ष में उसकी सहायता करने की सोची। वह एक कैंची लाया, उसने कैंची से उस खोल को काटकर रेशम कीट के तितली रूप को बाहर निकाला।

वह सोच रहा था कि तितली बाहर आकर तुरंत उड़ जाएगी किंतु यह क्या? वह तितली हमेशा के लिए अविकसित रह गई। उस व्यक्ति ने अनजाने में उस तितली के उड़ने की तमाम संभावनाओं और क्षमताओं को समाप्त कर दिया। वैज्ञानिकों के अनुसार रेशम कीट का तितली रूप जब खोल से बाहर आने की प्रक्रिया से गुजरता है तो कुछ रसायन स्रावित होते हैं जो तितली के विकास में सहायक होते हैं। इसी प्रकार अध्यापक बनाने से संबंधित पाठ्यचर्या भी होनी चाहिए जो विद्यार्थी-अध्यापकों को शिक्षा/प्रशिक्षण की प्रक्रिया में शिक्षा से जुड़े मुद्दों तथा गतिविधियों से रसिक कर उसके अध्यापक जीवन में परिपक्वता ला सके।

विद्यार्थी-अध्यापकों हेतु विकसित की जाने वाली पाठ्यचर्या में बाल विकास से संबंधित सिद्धांतों को अनिवार्यतः स्थान दिया जाना चाहिए। यदि पाठ्यचर्या प्राथमिक शिक्षा से संबंधित है तो बाल विकास संबंधित सिद्धांतों को (अल्प वय वर्ग वाले बच्चों हेतु) तथा माध्यमिक स्तर से संबंधित हो तो किशोरावस्था से संबंधित सिद्धांतों को महत्व दिया जाना चाहिए। लेकिन शिक्षण रटत से मुक्त होना चाहिए। इसके लिए विद्यार्थी-अध्यापकों को बच्चों को समझने के पर्याप्त अवसर पाठ्यचर्या में सम्मिलित होने चाहिए। उन्हें ऐसे प्रोजेक्ट दिए जाएँ जो बाल अवलोकन पर आधारित हों। वे विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक और भाषागत विभिन्नता में रहने वाले बच्चों का अवलोकन कर पाएँ तथा उनका पर्यवेक्षण और विश्लेषण कर सकें। इससे वे बच्चों की अधिगम तथा चिंतन की प्रक्रिया

की समझ भी विकसित कर पाएँगे। विद्यार्थी और अध्यापक जिस समाज के अभिन्न अंग हैं, वह कई सामाजिक मुद्दों से जूझता रहता है। इसलिए पाठ्यचर्या को जेण्डर, समता, निर्धनता, विविधता, पर्यावरण, बाल अधिकार, मानवाधिकार, बाल मजदूरी, कुपोषण आदि मुद्दों के प्रति विद्यार्थी को संवेदीकृत करने की दृष्टि से सक्षम होना चाहिए। पाठ्यचर्या में इन मुद्दों पर आधारित परियोजना सम्मिलित की जानी चाहिए। शिक्षा के विविध उद्देश्य, लक्ष्य आदि पर विश्लेषण की दक्षता का विकास करने के लिए विद्यार्थी-अध्यापकों को समय-समय पर सेमिनार, व्याख्यान, सामूहिक परिचर्चा आदि में सम्मिलित होने के अवसर दिए जाने आवश्यक हैं।

मूल्यपरक शिक्षा के लिए कहा जाता है 'Values are not taught, but should be caught' मूल्यपरक शिक्षा से संबंधित संबोधों का सीधे शिक्षण करने के बजाय थियेटर और ड्रामा जैसी गतिविधियों का संचालन किया जा सकता है। विद्यार्थी-अध्यापकों को पाठ्यचर्या, (अवधारणा, पाठ्यचर्या में कक्षावार क्रमिकता और जुड़ाव आदि), पाठ्यवस्तु आदि के सैद्धांतिक पक्षों के साथ-साथ व्यवहारगत अभ्यासों को पाठ्यचर्या में पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए। विद्यार्थी-अध्यापकों में पाठ्यचर्या के माध्यम से यह दृष्टि विकसित की जानी चाहिए कि पाठ्यपुस्तकें किन्हीं निर्धारित दक्षताओं को प्राप्त करने के लिए एक महत्वपूर्ण साधन तो हैं, किंतु अंतिम साधन नहीं। पुस्तकों के अलावा ज्ञान सृजन के अन्य संसाधनों की पहचान और उनके उपयोग की समझ का विकास करना भी पाठ्यचर्या का अभिन्न अंग होना

चाहिए। इसके साथ ही अध्यापकों में पाठ्यचर्या को स्थानीय परिस्थितियों में ढालने की क्षमता का विकास करना भी, पाठ्यचर्या में निहित उद्देश्यों में शामिल होना चाहिए। अध्यापक को अपने ज्ञान के अंतिम स्रोत के रूप में मानने के स्थान पर ज्ञान सृजन के लिए परिस्थितियों तथा वातावरण निर्माता के रूप में देखकर शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को संचालित करना चाहिए। इसके लिए उसे बाल-केंद्रित सहगामी अधिगम प्रक्रियाओं को संचालित करना चाहिए। उसे स्व-विश्लेषण तथा स्व-मूल्यांकन के साथ-साथ विद्यार्थियों की भावनाओं की समझ होना भी जरूरी है। उसे ऐसे प्रयासों को प्रोत्साहित करना चाहिए जो विद्यार्थियों में तार्किक चिंतन को बढ़ावा दे सकें।

अध्यापकों के पेशेवर विकास और इंटरनशिप कार्यक्रम

प्रायः यह सुनने को मिलता है कि अमुक व्यक्ति एम. बी. बी. एस. की डिग्री करने के बाद किसी अस्पताल में वरिष्ठ चिकित्सक के साथ प्रैक्टिस कर रहा है या एल. एल. बी. करने के बाद सीनियर वकील के साथ प्रैक्टिस कर रहा है। चूँकि अध्यापक बनने की प्रक्रिया में भी प्राप्त सैद्धांतिक ज्ञान को वास्तविक स्थिति में लागू करने की आवश्यकता होती है, अतः अन्य पेशों की भाँति इंटरनशिप कार्यक्रम अध्यापकों के पेशेवर विकास का भी एक महत्वपूर्ण सोपान है। इंटरनशिप कार्यक्रम से प्रशिक्षु को अपने सैद्धांतिक ज्ञान को व्यावहारिक परिस्थितियों में लागू करने में आने वाली कठिनाइयों और उनके समाधान हेतु क्या प्रयास किए जाएँ, इस संबंध में सम्यक दृष्टि का विकास होता है। शिक्षण में इंटरनशिप के समय

विद्यार्थी-अध्यापकों को शिक्षण हेतु कुछ कालांश निर्धारित किए जाते हैं। इन कालांशों के शिक्षण के साथ-साथ उन्हें विद्यालय के विभिन्न अभिलेखों के अवलोकन और रखरखाव को समझने के लिए पर्याप्त अवसर दिए जाने चाहिए। पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप विद्यालयी पाठ्यचर्या के महत्वपूर्ण अंग हैं। अतः इंटरनशिप में विद्यार्थी-अध्यापकों को विद्यालय में आयोजित होने वाले इन क्रियाकलापों के अवलोकन तथा संचालन के अवसर दिए जाने चाहिए। पाठ्य सहगामी क्रियाकलापों को पाठ्य क्रियाकलाप का हिस्सा बनाकर शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को रोचक, बाल-केंद्रित और परिणामोन्मुखी बनाया जा सकता है। कक्षा-कक्ष में शिक्षण हेतु निर्धारित कालांशों में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया से संबंधित ऐसी या अन्य गतिविधियों के संचालन के संदर्भ में विद्यार्थी-अध्यापकों को गतिविधियों के चयन और संचालन में स्वायत्तता होनी चाहिए। प्रधानाध्यापक या वरिष्ठ अध्यापक द्वारा विद्यार्थी-अध्यापक के शिक्षण का मैत्रीपूर्ण वातावरण में अवलोकन कर उसे आवश्यक सुझाव देने चाहिए और अपने अनुभव साझा करने चाहिए।

इंटरनशिप के दौरान विद्यार्थी-अध्यापकों को अपने प्रेक्षणों का रिकॉर्ड भी रखना चाहिए और समय-समय पर उनका विश्लेषण भी करना चाहिए। उन्हें शिक्षण से संबंधित अनुभव की गई समस्याओं की पहचान कर शोध परियोजना भी तैयार करनी चाहिए। इससे उन्हें कक्षा-कक्ष शिक्षण को सुधारात्मक और उपलब्धिपूर्ण बनाने में सहायता प्राप्त होगी। इंटरनशिप के दौरान विद्यार्थी-अध्यापकों

को विद्यालय के समस्त प्रशासनिक एवं अकादमिक नेतृत्व संबंधी क्रियाकलापों को जानना-समझना आवश्यक है। इन सभी क्रियाकलापों के प्रभावी संचालन के लिए इंटरशिप की अवधि पर्याप्त होनी चाहिए।

अध्यापकों का पेशेवर विकास और शोध

अध्यापक बनने की सतत प्रक्रिया में सहभागी होने के लिए एक अध्यापक का अच्छा शोधक होना आवश्यक है। शोध ज्ञान की साझेदारी और सृजित करने का सशक्त माध्यम है। शैक्षिक शोध हमें शिक्षा के क्षेत्र में वर्तमान एवं पूर्व-स्थापित ज्ञान के परीक्षण और सत्यापन का अवसर प्रदान करता है। इससे नवीन ज्ञान के विकास की प्रक्रिया को बल मिलता है। शिक्षा में शोध के माध्यम से अध्यापक को उन क्षेत्रों की पहचान करने में सहायता मिलती है जिन पर शिक्षा को गुणवत्तापरक बनाए जाने हेतु कार्य किए जाने की आवश्यकता है। वह इन क्षेत्रों की पहचान कर अपनी कार्यनीति को क्रियान्वित करता है। इस प्रकार शोध अध्यापकों के पेशेवर विकास की प्रक्रिया से संबंधित डिप्लोमा या डिग्री कोर्सों तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों की पाठ्यचर्या, पाठ्यचर्या तथा क्षमता अभिवर्धन कार्यक्रमों हेतु क्षेत्रों की पहचान कर उन्हें दिशा प्रदान करने का कार्य करता है।

मौलिक शोध की भाँति क्रियात्मक शोध भी अध्यापकों के पेशेवर विकास की सतत प्रक्रिया का अंग है। यह अध्यापक को स्व-मूल्यांकन के अवसर प्रदान करता है। स्टेफिन कोरे के शब्दों में, क्रियात्मक शोध का अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा अभ्यासकर्ता अपने निर्णयों तथा प्रतिक्रियाओं का

पथ-निर्देशन एवं मूल्यांकन करने के लिए अपनी समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करने का प्रयत्न करता है। क्रियात्मक शोध की उत्पत्ति अभ्यासकर्ता की असंतुष्टि से होती है। वह अपनी उपलब्धि के शत-प्रतिशत लक्ष्य पर केंद्रित रहता है। वह विश्लेषित करता है कि ऐसी कौन-सी समस्याएँ हैं जो उसकी उपलब्धि को प्रभावित कर रही हैं? वह उन समस्याओं के निराकरण के लिए सुधारात्मक उपायों की खोज करता है। सुधारात्मक उपायों से उसकी उपलब्धि में क्या परिवर्तन आया है? वह इसका सतत मूल्यांकन करता है। इस प्रकार क्रियात्मक शोध अध्यापक को पेशेवर विकास की सतत प्रक्रिया की ओर प्रयत्नशील बनाए रखता है।

अध्यापकों के पेशेवर विकास और नेतृत्वशीलता

विद्यालय को समाज की एक लघु इकाई के रूप में भी विश्लेषित किया जा सकता है। विद्यालय में विभिन्न क्षेत्र, जाति, समुदाय, योग्यता, शारीरिक क्षमता आदि से संबंधित बच्चों को एक मुख्यधारा में बनाए रखना अध्यापक में नेतृत्वशीलता के गुण के कारण ही संभव हो सकता है। अध्यापक को विद्यालयी नेतृत्व के साथ-साथ सामाजिक नेतृत्व की जिम्मेदारी भी निभानी पड़ती है। अतः नेतृत्वशीलता के प्रति सजग अध्यापक ही पेशेवर विकास की सतत प्रक्रिया की ओर अग्रसर रहता है। सेवा-पूर्व और सेवारत अध्यापक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों से संबंधित पाठ्यचर्या, पाठ्यचर्या तथा पाठ्यवस्तु में नेतृत्वशीलता को महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्थान दिया जाना चाहिए।

जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा आयोजित सेवा-पूर्व शिक्षा कार्यक्रम, जैसे— डिप्लोमा इन एलीमेंट्री एजुकेशन आदि की पाठ्यचर्या को क्रियान्वित करने में प्राचार्य तथा अध्यापक-प्राध्यापकों को समन्वित रूप से कार्य करना चाहिए। जिससे विद्यार्थी-अध्यापकों में नेतृत्वशीलता का विकास हो सके। अध्यापकों को कई कार्य उच्च स्तर से प्राप्त निर्देशों के क्रम में संपादित करने पड़ते हैं। उच्च स्तरीय अधिकारियों को इन निर्देशों से संबंधित कार्ययोजना को बनाने में अध्यापकों की सलाह लेनी चाहिए और महत्वपूर्ण सुझावों को अनदेखा नहीं करना चाहिए। नेतृत्व संबंधी यह प्रक्रिया अकादमिक स्वायत्तता को बढ़ावा देगी जो अध्यापक के पेशेवर विकास की सतत प्रक्रिया का एक आवश्यक तत्व है। इसके साथ ही उच्च स्तरीय इकाइयों द्वारा विद्यालयों को नियंत्रण के स्थान पर अकादमिक अनुसमर्थन प्रदान करना चाहिए।

अध्यापकों के पेशेवर विकास एवं क्षमता अभिवर्धन कार्यक्रम

अध्यापकों के पेशेवर विकास की सतत प्रक्रिया में क्षमता अभिवर्धन कार्यक्रमों का विशिष्ट स्थान है। शिक्षा आयोग (1964-66), अध्यापकों पर राष्ट्रीय आयोग (1983-85), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) तथा राममूर्ति शिक्षा समिति (1990) आदि ने समय-समय पर सेवाकालीन क्षमता अभिवर्धन कार्यक्रमों की आवश्यकता पर बल दिया है। इन कार्यक्रमों का आयोजन प्रशिक्षण आवश्यकताओं की व्यवस्थित पहचान और शोध से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर ही होना चाहिए। शोध और प्रशिक्षण

आवश्यकताओं को जाने बिना क्षमता अभिवर्धन कार्यक्रम अध्यापकों की पेशेवर कुशलता का संवर्धन अपेक्षानुरूप नहीं कर पाते हैं।

अध्यापकों की पेशेवर कुशलता संवर्धन हेतु आयोजित कार्यक्रमों की शिक्षण-प्रशिक्षण प्रविधि सृजनवाद पर आधारित होनी चाहिए। इसमें भाषण आधारित अधिगम के स्थान पर सामूहिक शिक्षण पर बल देना चाहिए। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा— 2005* क्षमता अभिवर्धन कार्यक्रमों पर बल देती है तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों को सिद्धांत और व्यवहार के समन्वित रूप में आयोजित करने की मंशा व्यक्त करती है। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005* में निहित भावना के अनुरूप सेवाकालीन प्रशिक्षण एक घटना के रूप में नहीं, अपितु ज्ञान, विकास, दृष्टिकोण, कौशल प्रवृत्तियों और व्यवहार में बदलाव पर आधारित एक प्रक्रिया के रूप में नियोजित किए जाने चाहिए।

इन कार्यक्रमों का विधिवत् *फॉलो-अप* भी आवश्यक है। अध्यापकों के पेशेवर विकास की सतत प्रक्रिया को बनाए रखने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों का नियोजन और क्रियान्वयन इस प्रकार होना चाहिए कि ये अध्यापकों के पेशेवर अधिगम और विकास के प्रमुख लक्ष्यों को प्राप्त कर सके। यह अध्यापकों को खोजबीन, चिंतन-मनन और विकास की प्रणाली विकसित करने में सहायक हो। क्षमता अभिवर्धन कार्यक्रमों से अध्यापकों में विद्यालयी शिक्षा के बारे में ज्ञान प्राप्त करने की सतत लालसा और ज्ञान को अद्यतन करने की प्रवृत्ति का विकास होना चाहिए।

अध्यापकों के क्षमता अभिवर्धन को गुणवत्तापरक बनाने के लिए पेशेवर दृष्टि से कुशल मुख्य संदर्भदाताओं और मास्टर ट्रेनरों का एक सशक्त पुल भी बनाया जाना आवश्यक है। संदर्भदाता और मास्टर ट्रेनरों के रूप में विषय अध्यापकों को प्रशिक्षण प्रदान करने से उनके अपने विषय के अध्यापन का कार्य अधिक गुणात्मक होगा, किंतु इन कार्यक्रमों में अत्यधिक व्यस्तता के कारण वे शिक्षण कार्य से विरत भी हो सकते हैं। अतः अनुभवी और नवाचारी सेवानिवृत्त अध्यापकों और अध्यापक-प्राध्यापकों का सहयोग भी इसमें लिया जा सकता है।

अध्यापकों के पेशेवर विकास की प्रक्रिया में आए ठहराव की पहचान और इस प्रक्रिया को गतिशीलता प्रदान करना क्षमता अभिवर्धन कार्यक्रमों का लक्ष्य होता है। इसके लिए आवश्यकतानुसार छोटी अवधि, जैसे— एक वर्ष तथा दीर्घ अवधि, जैसे— तीन या पाँच वर्षों की कार्ययोजना पर आधारित कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए। इसके अंतर्गत प्रशिक्षण आवश्यकताओं की पहचान, प्रशिक्षण साहित्य का विकास, प्रशिक्षण साहित्य का प्रायोगिक परीक्षण, प्रायोगिक परीक्षण के उपरान्त प्रशिक्षण साहित्य का परिवर्धन, मुख्य संदर्भदाता तथा मास्टर ट्रेनरों का प्रशिक्षण, सेवारत अध्यापक-प्रशिक्षण, प्रशिक्षण का शिक्षण स्थल पर क्रियान्वयन और अध्यापक-प्रशिक्षण के शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया पर पड़ने वाले प्रभाव का मूल्यांकन किया जा सकता है। प्रत्येक चरण को संपादित करने के लिए पर्याप्त समय निर्धारित किया जाना चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए

कि पूर्ववर्ती प्रशिक्षण का क्रियान्वयन हो ही नहीं पाया और उन्हीं लक्ष्यों और उद्देश्यों पर आधारित नवीन कार्यक्रम प्रारंभ किया जाए।

अध्यापकों का पेशेवर विकास और सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी

शिक्षा के कुछ उद्देश्य सनातन होते हैं अर्थात् हर युगीन परिस्थितियों में उनका महत्व बना रहता है। मूल्यपरक शिक्षा, जैसे — नैतिकता, ईमानदारी आदि से संबंधित उद्देश्य इनके अंतर्गत रखे जा सकते हैं। शिक्षा के कुछ उद्देश्य युगीन संदर्भों में बदल जाते हैं। आज वैश्वीकरण के कारण संपूर्ण विश्व एक वृहद् गाँव में बदल चुका है। ऐसे समय में अध्यापकों के पेशेवर विकास की तैयारी और प्रक्रिया के स्वरूप में भी परिवर्तन आ गया है। वर्तमान संदर्भ में अध्यापकों के पेशेवर विकास की प्रक्रिया से संबंधित पाठ्यचर्या, पाठ्यवस्तु, मूल्यांकन, सेवारत तथा सेवा-पूर्व अध्यापक शिक्षा आदि में सूचना संप्रेषण तकनीकी का समावेश आवश्यक हो गया है। सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी विश्व के विभिन्न देशों में शिक्षा के क्षेत्र में किए जा रहे नवाचारी प्रयासों की साझेदारी का एक प्रभावी माध्यम बन चुकी है। आज परंपरागत शिक्षण-अधिगम सामग्री की जगह अंतर्क्रियात्मक श्वेत पट (Interactive white board) ने ले ली है। दर्शकों की प्रतिक्रिया प्रणाली का विकास जिसमें वे दूर बैठे ही अंतर्क्रिया करते हैं, सूचना संप्रेषण तकनीकी का महत्वपूर्ण पक्ष है। अध्यापकों के डिप्लोमा कोर्सों, पाठ्यक्रमों तथा क्षमता अभिवर्धन कार्यक्रमों आदि में शैक्षिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सॉफ्टवेयरों, जैसे— जियोजेब्रा (विभिन्न प्रकार की

रेखाओं, आकृतियों आदि को समझने की दृष्टि से महत्वपूर्ण), फ्रैट (गणित, पर्यावरणीय अध्ययन, अंग्रेजी आदि से संबंधित अनिमेशन वीडियो आधारित), स्टेलेरियम (आकाश गंगा, तारों आदि के 3D रूप में अवलोकन हेतु), कैल्जियम (तत्वों की आवर्त सारणी को समझने के लिए) तथा टक्स मैथ कमांड (गणितीय संक्रियाओं पर आधारित गतिविधियों के लिए) आदि से संबंधित विषय-वस्तु तथा क्रियात्मक गतिविधियों को सम्मिलित करना आवश्यक हो गया है। शैक्षिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इन सॉफ्टवेयरों के अतिरिक्त सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी से संबंधित महत्वपूर्ण लिंकों एवं ई-पत्रिकाओं की जानकारी भी अध्यापकों को होनी जरूरी है। अध्यापकों के पेशेवर कुशलता संवर्धन से संबंधित कार्यक्रमों में इनके प्रयोग हेतु विद्यार्थी अध्यापकों को प्रेरित किया जाना चाहिए।

सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी ने जहाँ ज्ञान के नए दरवाजों को खोला है, वहीं एक मायावी संसार की भी रचना की है। अतः ऐसे समय में सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी के विवेकपूर्ण उपयोग के लिए एक काउंसलर के रूप में भी अध्यापक की नयी भूमिका ने जन्म लिया है। सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी के लिए बनाए कार्यक्रमों को निष्क्रिय रूप से देखने और सुनने के बजाय इनमें क्रियात्मक अभ्यासों को स्थान दिया जाना चाहिए। इससे विद्यार्थियों की रचनात्मकता को अभिव्यक्त होने और निखरने के अवसर प्राप्त होंगे। अध्यापकों के पेशेवर विकास से संबंधित कार्यक्रमों की तैयारी में इन बातों का ध्यान रखना जरूरी है।

अध्यापकों के पेशेवर विकास और प्रबंधन
परंपरागत रूप से एक अध्यापक का मुख्य कार्य शिक्षा प्रदान करना, सामाजीकरण एवं मूल्यांकन रहा है। किंतु वर्तमान बदलती परिस्थितियों में पाठ्यचर्या नियोजन, समय प्रबंधन, परीक्षा प्रबंधन, पाठ्य सहगामी क्रियाकलापों का प्रबंधन और मार्गदर्शन तथा परामर्श आदि से संबंधित क्रियाओं का संचालन उसके दायित्व का अभिन्न हिस्सा बन चुके हैं।

अतः अध्यापक को तैयार करने और उसकी पेशेवर कुशलता संवर्धन से संबंधित कोर्सों में प्रबंधन से संबंधित विषय-वस्तु का अनिवार्यतः समावेश होना चाहिए, जिससे वह विद्यालय में आयोजित क्रियाकलापों का नियोजन एवं क्रियान्वयन सफलतापूर्वक कर सके।

अध्यापकों के पेशेवर विकास की प्रक्रिया और मूल्यांकन

शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया हेतु अध्यापक कुछ लक्ष्य एवं उद्देश्यों को निर्धारित करता है। यह किस हद तक प्राप्त हुए? इसकी प्रगति को वह मूल्यांकन के आधार पर जाँचता है। अध्यापकों के पेशेवर विकास की प्रक्रिया की निरंतरता के लिए उन्हें अपनी पाठ्यचर्या का भी मूल्यांकन करना चाहिए। उन्हें समय-समय पर उनसे संबंधित सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों की भी समीक्षा करनी चाहिए। उन्हें पाठ्यचर्या तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों के परिवर्धन से संबंधित सुझाव अध्यापक शिक्षा से संबंधित संस्थानों, जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (DIET), राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण

परिषद् (SCERT), सीमैट (State Institute of Educational Management and Training—SIEMAT), सी.टी.ई. (College of Teacher Education—CTE), आई.ए.एस.ई. (Institute of Advanced Studies in Education—IASE) आदि को देना चाहिए। अध्यापक शिक्षा से संबंधित संस्थानों को भी समय-समय पर पाठ्यचर्या के मूल्यांकन करने की पहल करनी चाहिए।

सेवाकालीन क्षमता अभिवर्धन कार्यक्रमों में अध्यापकों को इन कार्यक्रमों के मूल्यांकन हेतु पर्याप्त अवसर दिए जाने चाहिए। प्रशिक्षण कार्यक्रमों के फ़ीडबैक/मूल्यांकन सत्र को भी अन्य सत्रों से कम महत्वपूर्ण नहीं माना जाना चाहिए। समय सारिणी में इस सत्र हेतु पर्याप्त समय नियोजित किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में मास्टर ट्रेनरों को विशेष ध्यान रखना चाहिए। कई बार प्रशिक्षण लेने वाले अध्यापक 'कहीं बुरा न लगे' यह सोचकर निरपेक्ष भाव से फ़ीडबैक नहीं दे पाते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें छूट होनी चाहिए कि वे चाहें तो फ़ीडबैक प्रपत्र में अपना नाम नहीं भी लिख सकते हैं।

अध्यापक बनने की सतत प्रक्रिया में अपने को अग्रसर रखने के लिए अध्यापक को समय-समय पर अपना स्वॉट निरीक्षण (SWOT Analysis — S-Strength, W-Weakness, O-Opportunity, T-Threat) करना चाहिए। इसके अंतर्गत उसे आत्ममुग्धता से निरपेक्ष होकर अपने सकारात्मक पक्ष (Strength) तथा सुधारात्मक पक्ष (Weakness) का विश्लेषण करना

चाहिए। जिससे वह पेशेगत खतरों (Threat) से बच सके और ज्ञान सृजन तथा अध्यापकों के पेशेवर विकास की प्रक्रियाओं में सम्मिलित होने के अवसर (Opportunity) प्राप्त कर सके।

अध्यापकों का पेशेवर विकास और अन्य मसले

अध्यापकों के पेशेवर विकास की प्रक्रिया का मसला योग्य और रुचिशील अध्यापकों के चयन से भी जुड़ा है। अध्यापकों के चयन को राजनीतिक तुष्टीकरण या आंदोलनों के दबाव से मुक्त रहना चाहिए। प्रायः ऐसा भी देखा जाता है कि युवा मेडिकल, इंजीनियरिंग, प्रशासनिक आदि क्षेत्रों में जाना चाहते हैं। जब वे इन क्षेत्रों में असफल हो जाते हैं तो उन्हें अध्यापन कार्य रोज़गार प्राप्त करने का एकमात्र रास्ता लगता है। अतः रुचि न होने के बावजूद वे अपने करियर के रूप में अध्यापन व्यवसाय का चयन करते हैं। रोज़गार की बाध्यता के चलते अध्यापक बनने की सतत प्रक्रिया में वे सम्मिलित हो जाते हैं। इसलिए सेवा-पूर्व और सेवारत प्रशिक्षण के पाठ्यचर्या और प्रशिक्षण की प्रविधि इस स्तर की होनी चाहिए जो ऐसे अध्यापकों की भी पेशेवर विकास की प्रक्रिया को गतिशील बना सके।

अध्यापक एक मानव है। अतः उस पर भी मानव मनोविज्ञान के नियम लागू होते हैं। वह भी सकारात्मक और नकारात्मक अभिप्रेरणा से प्रभावित होता है। पेशेवर और कुशल अध्यापक बनने के मार्ग में नकारात्मक अभिप्रेरणा भी बाधा डालती है। शिक्षण से जुड़ने पर लंबे समय तक पदोन्नति न

होने से अध्यापक अपने कर्म में नीरसता का अनुभव करते हैं। उन्हें पता है कि उनकी पदोन्नति वरिष्ठता के आधार पर ही होनी है। चाहे वह कितना योग्य, पेशेवर और समर्पित क्यों न हो? अतः अध्यापकों की पेशेवर कुशलता संवर्धन हेतु वरिष्ठता के साथ-साथ योग्यता, अध्यापक द्वारा किए नवाचारी कार्य, उपलब्धि एवं विभागीय परीक्षाओं के माध्यम से उन्हें पदोन्नति के अवसर प्रदान किए जाने आवश्यक हैं।

प्रभावी स्थानांतरण नीति लागू न होना भी नकारात्मक अभिप्रेरणा का उदाहरण है। अध्यापन कर्म के प्रति समर्पित एक अध्यापक जब देखता है कि वह वर्षों से दुर्गम स्थानों में अपनी सेवाएँ दे रहा है, उसी जैसा या उससे कम समर्पित अध्यापक का सेवाकाल सुगम में ही बीत रहा है तो उसकी कार्यक्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उत्कृष्ट कार्य करने पर सम्मानित न किया जाना और कर्तव्यों से विमुख होने पर दंड की व्यवस्था न होना भी एक अध्यापक के पेशेवर विकास की प्रक्रिया में बाधक है।

अध्यापक शिक्षा की पाठ्यचर्या विशेषकर सेवा-पूर्व अध्यापक शिक्षा तथा उच्च शिक्षा की पाठ्यचर्या में भी संबद्धता होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त अध्यापकों के पेशेवर विकास की प्रक्रिया में ठहराव को आने से रोकने के लिए अध्यापकों के लिए विभिन्न शिक्षण संस्थानों के भ्रमण की व्यवस्था की जानी चाहिए। इससे वे विभिन्न नवाचारी गतिविधियों से परिचित हो पाएँगे और अपने द्वारा की गई नवाचारी गतिविधियों की साझेदारी कर सकेंगे।

अध्यापक शिक्षा का ढाँचा

अध्यापकों के पेशेवर विकास की सतत प्रक्रिया में अध्यापक शिक्षा का उपयुक्त ढाँचा और स्वरूप भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है। कोठारी आयोग (1964-66) ने अध्यापक शिक्षा को अकादमिक जीवन की मुख्यधारा से जोड़ने पर बल दिया। इसके लिए हमें अध्यापक शिक्षा के ढाँचे को सुदृढ़ बनाना होगा। अध्यापक-प्राध्यापक और विषय का अध्यापन करने वाले अध्यापकों के कार्यों में अंतर्संबंध तो है, किंतु दोनों के कार्यों की प्रकृति में विशिष्ट अंतर भी है।

अध्यापक बनने के प्रक्रिया को ठोस धरातल प्रदान करने के लिए अध्यापक शिक्षा का पृथक कैडर लागू किया जाना अति आवश्यक है। इसके अंतर्गत रुचिवान और नवाचारी अध्यापकों से विकल्प माँगे जाने चाहिए कि वे दोनों में से किस का चयन करते हैं? अध्यापक शिक्षा और अध्यापन का पृथक कैडर लागू न होने से कई व्यावहारिक दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थानों में सरकार द्वारा विविध प्रशिक्षण कार्यक्रमों, जैसे— डी. टी. एस. (Direct Trainer Skills) डी. ओ. टी. (Design of Training), ई. ओ. टी. (Evaluation of Training), टी. एन. ए. (Training needs Analysis), एम. ओ. टी. (Management of Training) आदि का आयोजन किया जाता है। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य अध्यापक शिक्षा में आए संकाय सदस्यों को अध्यापक-प्राध्यापक के रूप में विकसित करना है। पृथक कैडर लागू

न होने के कारण यह अध्यापक-प्राध्यापक जब इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों से प्राप्त दक्षताओं को लागू करना चाहते हैं तब उनका स्थानांतरण या पदोन्नति विषय अध्यापकों या प्रधानाध्यापक/प्रधानाचार्य के रूप में हो जाती है। इससे उनकी दक्षताओं के उपयोग का चक्र यहीं पर टूट जाता है। परिणामतः प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर सरकार द्वारा किया गया प्रयास व्यर्थ चला जाता है। इसी प्रकार अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थानों को प्रशासनिक व्यक्तियों के दंड वाली जगह या मुख्यालयों में टिके रहने वाली जगह को मानने की अवधारणा भी अध्यापक बनने की प्रक्रिया में प्रबल विरोधी कारण है। अध्यापक शिक्षा को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थानों को स्वायत्तता देना आवश्यक है। कई बार इन संस्थानों को गैर

अकादमिक कार्यों, जैसे — अध्यापक भर्ती प्रक्रिया, विभिन्न प्रकार की छात्रवृत्ति परीक्षाओं के आयोजन आदि में झोंकने के समाचार भी प्राप्त होते हैं। इससे इन संस्थानों की अकादमिक ऊर्जा का क्षय होता है।

निष्कर्ष

अतः अध्यापकों का पेशेवर विकास कई कारकों पर निर्भर करता है और कई तत्वों से प्रभावित होता है। अध्यापकों के पेशेवर विकास से संबंधित कार्यक्रमों के नियोजन में किसी भी कारक और तत्व की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। अध्यापकों के पेशेवर विकास का दायित्व राष्ट्रीय, राज्य, जिला स्तरीय आदि संस्थाओं का ही नहीं, अपितु स्वयं अध्यापक का भी है और उसे भी इस दिशा में सतत प्रयासशील रहना चाहिए।

संदर्भ

- एन. सी. टी. ई. 2009. अध्यापक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा- 2009. एन. सी. टी. ई., नयी दिल्ली.
 ——. एजुकेशनल रिसर्च एंड इन्नोवेशन. एन. सी. ई. आर. टी., नयी दिल्ली.
 कोर, स्टीफन. एम. 1950. कंडीशंस कंडयूसिव टु करिकुलर एक्सपेरिमेंटेशन, एजुकेशनल एडमिनिस्ट्रेशन एंड सुपरविजन.
 चमोला उमेश. संप्रेषिका —माध्यमिक स्तर के अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण साहित्य. एस. सी. ई. आर. टी., उत्तराखंड.
 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005. एन. सी. ई. आर. टी., नयी दिल्ली.

<http://omprakashkashyap.wordpress.com>.

शिक्षकों में पेशेवर चेतना एक महती ज़रूरत

जितेन्द्र कुमार लोढ़ा*

इस लेख में शिक्षण पेशे के विकास संबंधी वर्तमान एवं यथार्थ संदर्भों को खंगालने का प्रयास किया गया है, जिसमें शिक्षकों के पेशेवर विकास के मायने, पहलू, मार्ग व अनुभवजनित अवलोकन के निष्कर्षात्मक विशेषण जैसे पक्ष सम्मिलित हैं। इन सभी पक्षों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षण पेशे में अधिकांश निवेश शिक्षकों के करियर के शुरू में ही कर दिया जाता है। शिक्षा व उससे संदर्भित उत्पाद, शिक्षकों की गुणवत्ता से अलग कैसे हो सकते हैं? इसलिए शिक्षा व शिक्षक जगत में पेशेवर चेतना की अलख जगाना, वर्तमान के बदलावकारी व गत्यात्मक युग की महती आवश्यकता है, शिक्षकों के पेशेवर विकास की दशा को समझने का यह एक प्रयास है जो यह मानता है कि शिक्षकों के पेशेवर विकास की धारणा केवल एक घटना भर न होकर, बल्कि एक महत्वगामी प्रक्रम है, जो शिक्षकों के ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति एवं विकास के साथ-साथ उनकी प्रवृत्तियों व व्यवहारों को सामयिकता के पटल पर प्रबंधित करती है।

विषयपरक पृष्ठभूमि

आज हमारे देश में पेशे एवं नौकरशाहों के लिहाज से शिक्षक वर्ग बड़े वर्गों या शायद सबसे बड़े वर्ग के रूप में शुमार है, लेकिन पेशेवर विकास के पायदान पर वह आज भी परंपरागत स्वरूप से जुड़ा हुआ है। सीधी-सी बात है कि विकास एवं गतिशीलता के इस दौर में भी हमारे शिक्षकों में पेशेवर अंदाज नहीं है। इसके मूल में कारण चाहे जो भी हो, लेकिन एक बात स्पष्ट है, हमारा शिक्षक, शिक्षण नौकरी का मतलब प्राप्त मशीनी काम व तनख्वाह से समझता है तथा तरक्की का मतलब सिर्फ वेतन वृद्धि व पदोन्नति

से समझता है। जबकि उसके पेशेवर विकास में उसकी उत्पादक क्षमता, नीतिशास्त्रीय समझ, सामाजिक जागरूकता, सतत सीखना, पहलकदमी, स्वायत्तता, नेतृत्व, सामाजिक प्रतिबद्धता, जवाबदेही समयपरकता एवं हितधारी वर्गों (स्टेक होल्डर्स) की मांगों से अनुकूलन जैसे अनेक मुद्दे भी शामिल हैं, जो आज के शिक्षकों की पेशेवर छवि में प्रायः कम ही परिलक्षित होते हैं। वहीं दूसरी ओर राष्ट्र की वर्तमान शैक्षिक मांगों को देखते हैं तो हमें और भी अधिक शिक्षकों की आवश्यकता है, लिहाजा शिक्षकों की भर्ती, प्रशिक्षण, प्रोत्साहन एवं नौकरी में बनाए रखने

की दृष्टि से उनके पेशेवर विकास का चिंतन एवं क्रियान्वयन राष्ट्र को बहुआयामी लाभ देने वाला उपक्रम साबित होगा।

शिक्षक पेशे के वर्तमान परिदृश्य को देखकर लगता है कि आज शिक्षण पेशे में अधिकांश निवेश शिक्षकों के करियर के शुरू में ही कर दिया जाता है, शायद इसलिए डेलर्स कमीशन (1996) की संस्तुतियों में कहा गया है कि, 'वर्तमान समाज के गुणवत्तापूर्ण विकास के लिए आवश्यक है कि शिक्षक अपने ज्ञान को परिपूर्ण और विकसित बनाएँ। इसके लिए उन्हें सेवा-पूर्व एवं सेवाकाल में अपने पेशे की पूर्णताओं को प्राप्त करने के सतत प्रयास करते रहना चाहिए।' *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005* में भी इस बात को स्वीकारा गया है कि 'शिक्षकों की नियुक्ति, सेवा-पूर्ण प्रशिक्षण, सेवारत प्रशिक्षण तथा कार्य परिस्थितियों से संबंधित नीतियों में 1984 की चट्टोपाध्याय समिति के उन सुझावों की झलक मिलनी चाहिए, जो पेशेवर दक्षता के सुधार के संबंध में दिए गए थे।'

उपर्युक्त संस्तुतियाँ यथार्थ भी हैं, क्योंकि भूमंडलीकरण के इस वर्तमान युग में जीवन का लगभग हर क्षेत्र प्रतिस्पर्धा एवं गत्यात्मकता से जुड़ गया है, तकनीकी विकास के साथ-साथ संचार एवं सूचना क्रांति के विकास ने शिक्षा व शिक्षण पेशे की नयी माँगों को जन्म दिया है। विद्यार्थियों एवं अभिभावकों की परिवेशिक विशेषताओं में परिवर्तन हुआ है, साथ में ज्ञान निर्माण की धारणा एवं अध्ययनता का प्रचलन बढ़ा है। इन सब तथ्यों के चलते विगत कुछ वर्षों से 'शिक्षकों के पेशेवर

विकास के दृष्टिकोण' की बातें होना लाजमी है, यद्यपि शिक्षकों के पेशेवर विकास का अर्थ क्या हो? इसकी दृष्टि फिलहाल अधूरी है, क्योंकि शिक्षण पेशे को पूर्णतः चिकित्सा या वकालत जैसे शास्त्रीय पेशों की श्रेणी में नहीं गिना जा सकता। वह इसलिए कि शिक्षा समाज का विषय है, अतः शिक्षकों के पेशेवर विकास की किसी भी योजना में, उसके भावात्मक व सामाजिक पक्षों को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। इस वजह से आज आवश्यकता ऐसे पेशेवर शिक्षकों की है जो शिक्षा के सामाजिक सरोकारों को समझते हुए, अपनी शिक्षण शैलियों को, आज के विद्यार्थियों के अधिगम शैलियों के अनुरूप न केवल बनाए रखे, बल्कि इस दिशा में अपनी सचेष्टता एवं विकासात्मकता की दृष्टि को अपने अक्षुण्ण स्वरूप में पूर्ण एवं परिपक्व रखे।

शिक्षकों के पेशेवर विकास की अवधारणा एक बहुआयामी दृष्टिकोण है, जिसमें शिक्षकों की सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ-साथ उनके चयन, प्रशिक्षण, शैक्षणिक विकास, क्षमता निर्माण, निगरानी, आकलन एवं वैधानिकता जैसे अनेक मुद्दे शामिल हैं। ताज़ातरीन शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के अध्याय 4 की धारा 23 व 24 में भी शिक्षकों के पेशेवर विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण अपेक्षाएँ रखी हैं, जिसमें सेवा-पूर्व तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण की ही नहीं, बल्कि शिक्षकों के लिए सतत शिक्षा, सहायता एवं एक ऐसे सामर्थ्यजनक माहौल की बात की गई है, जो उन्हें हमेशा पेशेवर विकास के लिए प्रोत्साहित व प्रेरित करे। आज शिक्षकों के पेशेवर विकास की दृष्टि से चुनौती यह है कि शिक्षकों के

पेशेवर विकास में क्या कुछ शामिल हो? और दूसरी तरफ़ यह भी स्पष्ट हो कि आज सेवा के कुछ वर्षों बाद पदोन्नति की गारंटी तो है, मगर पेशेवर विकास के अन्य पहलू गौण हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) एवं आर्थिक नीति (1991) के चलते भारतीय शिक्षा में आज समता, क्षमता, दक्षता, गुणवत्ता, स्वायत्तता, सबकी भागीदारी, समावेशन, लोचपूर्णता, निजीकरण, वैधानिकीकरण, नवाचार, सूचना एवं संचार तकनीकी के साथ-साथ राष्ट्रीय शिक्षक मानक दक्षताओं जैसे मुद्दे प्रचलित हैं। अतः हम कह सकते हैं कि अन्य पेशों की भाँति शिक्षक पेशे की भी अपनी नैतिकता व मूल्य हैं, जिसके केंद्र में उनकी क्षमता व प्रतिबद्धता निहित है। केल्टर हेड और डोव्नी ने शिक्षक पेशे की धारणा में अर्जित ज्ञान, उपभोक्ता की सेवा व उसके साथ खास रिश्ता स्थापित करने की प्रवृत्ति, नीति, मूल्यों एवं दिशापरक न्याय के मुद्दों के ज्ञान के साथ राज्य और वाणिज्य के प्रभाव से उसके पेशेवर निर्णयों की स्वतंत्रता जैसे मुद्दों को शामिल किया है। इस दिशा में क्रिस्टोफ़र डे (1999) का यह तर्क भी महत्वपूर्ण है कि 'शिक्षकों के व्यावसायिक विकास को जीवनपर्यंत चलने वाली गतिविधि के रूप में देखा जाना चाहिए, जो उनके निजी और साथ ही पेशेवर जीवन पर कार्यस्थल की नीति और सामाजिक संदर्भ पर ध्यान केंद्रित करती है। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (2009) एवं (2014) ने सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं में परिवर्तन को स्वीकार कर, शिक्षकों के सतत पेशेवर विकास के नेतृत्व एवं कार्यबल के महत्व पर जोर देते हुए कहा कि पेशेवर विकास, व्यावसायिक दक्षता के लिए जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है।

इन सभी संदर्भों एवं विवेचन की पृष्ठभूमि से एक ही तथ्य उभरकर आता है कि गति व बदलाव के इस दौर में शिक्षकों में पेशेवर अंदाज़ का होना आज की महती एवं अधिष्ठापन माँग है, जो एक ओर उनकी सतत क्षमता एवं प्रतिबद्धता को केंद्र में रखकर, दूसरी ओर संबंधित सामाजिक संदर्भों एवं मूल्यों की प्रबल पक्षपाती बन जाती है। अतः शिक्षा व शिक्षक जगत में पेशेवर चेतना की अलख जगाना, एक समसामयिक उपक्रम है। जिससे शिक्षकों का न केवल अर्थ पक्ष मजबूत होगा, बल्कि उनके आत्मसम्मान को भी हमेशा उच्च दिशा मिलती रहेगी।

पेशेवर विकास के मायने

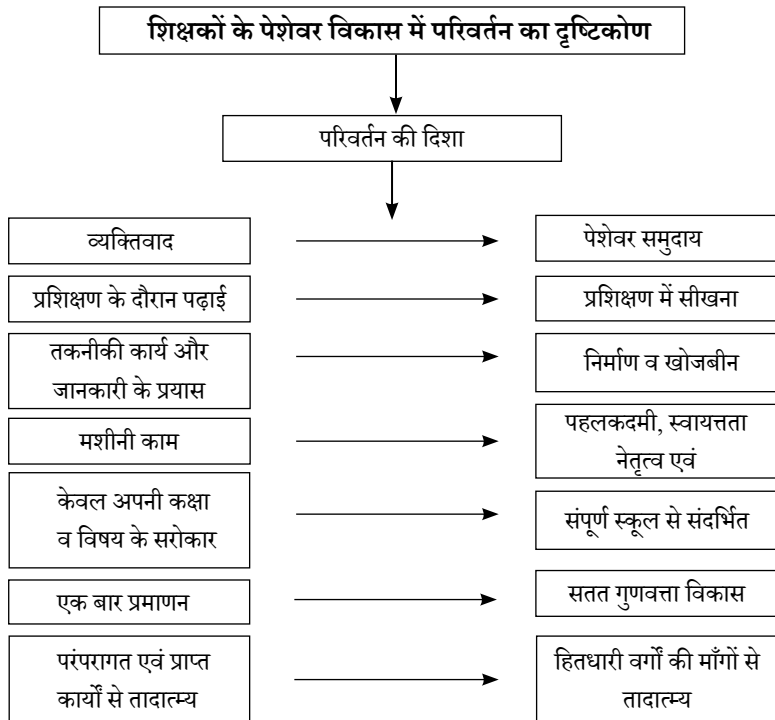
एक शिक्षक के पेशेवर विकास में विषय-वस्तु, कक्षा, स्कूल एवं समाज की जरूरतें होती हैं। यह सच है कि शिक्षण पेशे में आने से पूर्व दीर्घकालीन अधिगम प्रक्रिया से गुज़रकर विशिष्ट ज्ञान, प्रशिक्षण और कार्यानुभव अर्जित किया जाता है, साथ में यह भी सत्य है कि आर्थिक प्रतिफल के बदले में शिक्षण पेशा वैयक्तिक एवं सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। हमें यहाँ यह समझना होगा कि शिक्षण पेशे में एक पेशे के सभी सामान्य लक्षण होते हुए भी उसे अन्य शास्त्रीय पेशों के समकक्ष नहीं रखा जा सकता, क्योंकि शिक्षण एक विशिष्ट व अनूठा पेशा है, जिसकी कुछ निजी विशेषताएँ हैं, जिसके चलते हम इसे पूर्ण पेशे की परिधि में नहीं रख सकते। व्यवहार में शिक्षण एक वेतन भोगी वृत्ति समूह है, जो पूर्व-निर्धारित पाठ्यक्रमों को कक्षाओं में पढ़ाता है। अध्यापन व

मूल्यांकन के अलावा इस दिशा के अन्य नियम उसे बने-बनाए मिलते हैं। प्रायः शिक्षण वृत्ति में शिक्षक सामूहिक तौर पर अंतर्क्रिया करता है, अतः उसकी गुणवत्ता का आकलन भी कठिन है, साथ में यह भी तय करना दुरूह कार्य है कि किसी शिक्षक का उसके विद्यार्थियों के समग्र विकास पर कितना व कितनी दूर तक प्रभाव पड़ा?

वर्तमान के प्रचलित शिक्षण पेशे में, पेशेवर विकास की प्रक्रिया के अंतर्गत समग्र व सतत धारा का दृष्टिकोण नहीं दिखाई देता। शिक्षण वृत्ति के विकास के अधिकांश मार्ग यंत्रवत व संवाद रहित हैं, इन सबके चलते शिक्षकों में पेशेवर विकास का पहलू कमजोर है, अतः इस कारण आज के बदलते

परिवेश में शिक्षकों के पेशेवर विकास में परिवर्तन की धारणा बलवत हो चली है। इस दिशा में लिबरमैन और मिलर (2009) का यह मॉडल अनुकरणीय है

वर्तमान परिवेश को देखकर अब पुष्ट रूप से लगता है कि शिक्षण पेशे में भी 'पेशेवर संस्कृति' का विकास हो, लिहाजा आज के शिक्षकों में स्व-मूल्यांकन एवं आत्म-आलोचना का दृष्टिकोण विकसित करना आवश्यक है, ताकि उनमें अपने पेशे के मानक व नीतिशास्त्रीय समझ पैदा हो सके, जिसके चलते हमारे शिक्षक बंधु, अपने आपको सिर्फ वेतन व पदोन्नति के नजरिये से न देखकर, पेशेवर क्षमता एवं प्रतिबद्धताओं के नजरिये से देख सकें। आज शिक्षा में बाजारीकरण, होम स्कूलिंग, लर्निंग ऑल द टाइम



जैसी अनेक समकक्ष अवधारणाएँ शिक्षण को पूर्ण पेशा बनाने का प्रबल समर्थन कर रही हैं तो वहीं दूसरी ओर *कॉमन स्कूल सिस्टम*, शिक्षा अधिकार, शिक्षा सबके लिए एवं राष्ट्रीय दक्षताओं जैसी अवधारणाएँ शिक्षा के सामाजिक सरोकारों पर बल देती हैं, अतः शिक्षण वृत्ति का पेशेवर दृष्टिकोण आज राष्ट्रीय व सामाजिक प्रतिबद्धताओं तथा वैयक्तिक आर्थिक लाभों एवं विकासों के मध्य संतुलन का हिमायती है।

शिक्षा में वैश्वीकरण, निजीकरण एवं तकनीकीकरण की अवधारणाएँ इसी ओर इशारा कर रही हैं, फिर भी पेशेवर धारणा के इस प्रवाह में हमें शिक्षण के ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक पहलुओं को भी ध्यान में रखना होगा, क्योंकि अंततोगत्वा शिक्षण एक मिशन है, अतः शिक्षण को एक पेशे के रूप में विकसित करने के उत्साह में हमें उसकी सामाजिक प्रतिबद्धताओं वाले अनिवार्य पक्ष को विस्मृत नहीं होने देना है। आज भी शिक्षकों के कंधों पर अनेक सामाजिक दायित्वों का भार है, वह इसकी अनदेखी भी नहीं कर सकते। वैसे भी अगर देखा जाए तो सही व सम्यक मायने में ‘विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास’ ही शिक्षकों का प्रमुख पेशा है, इसलिए शिक्षकों के पेशेवर विकास की कोई भी योजना विद्यार्थियों के संदर्भ से परे हो ही नहीं सकती, अतः विद्यार्थियों की संतुष्टि व विकास का स्तर ही, शिक्षकों के पेशेवर विकास की सफलता का सबसे नज़दीकी व प्रत्यक्ष कसौटी है।

पेशेवर विकास के पहलू

जब एक शिक्षक अपने पेशे के आवश्यक गुणों को वर्तमान व गत्यात्मक समाज की आवश्यकता के आधार

पर विकसित एवं परिपूर्ण करे, साथ में अपने पेशे की अंतरात्मा व समझ को, बहुआयामी स्वरूप में विकसित करे, तब जाकर कहीं वह वर्तमान समाज की माँगों के आधार पर, शिक्षण प्रक्रिया में अच्छे ढंग से समायोजित हो पाएगा। इस प्रकार की अनवरत परिस्थितियों का, समग्र शिक्षकों के संदर्भ में, व्याप्त हो जाने के दृष्टिकोण को हम पेशेवर विकास की संज्ञा दे सकते हैं। इस संबंध में वयस्क एवं सतत शिक्षा के शब्दकोश (1996) में कहा गया है कि पेशेवर व्यक्ति के संगठन में अच्छे प्रयोग के लिए आवश्यक ज्ञान, कौशल, प्रशिक्षण एवं अभिवृत्तियों को वर्तमान के आधार पर विकसित करना ही, उसका पेशेवर विकास है। चिंतन की इस धारा से स्पष्ट होता है कि शिक्षकों के पेशेवर विकास के अनेक पहलू हैं, जिनको वरण किए बिना शिक्षकों का वृत्तिक विकास संभव नहीं है, वैसे भी ‘पहलू’ का मतलब पक्ष से होता है अर्थात् इन पक्षों की पहल व समावेशन करके ही शिक्षकों में पेशेवर विकास का शंखनाद कर सकते हैं, जिसकी बानगी आगे के चित्र से स्पष्ट है।

शिक्षकों के वृत्ति विकास के विविध पक्ष

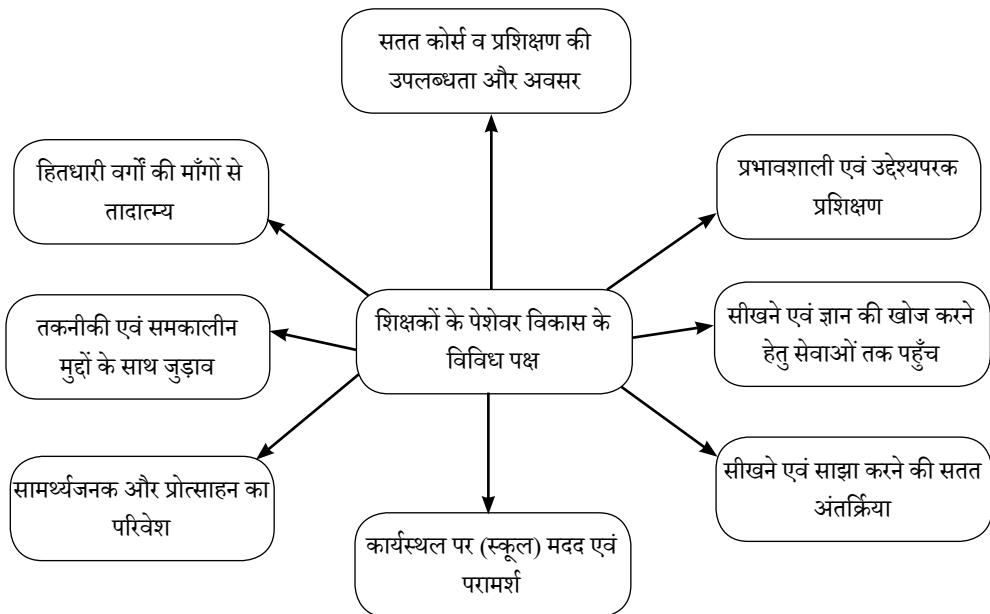
शिक्षकों के पेशेवर विकास के इन पहलुओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि पेशेवर विकास की अवधारणा में संगत शृंखला, संरचना, संबद्धता एवं सतत धारा जैसे गुण आवश्यक व अपेक्षित हैं, अतः इस संदर्भ में शिक्षा संस्थानों में सतत सीखने के अवसर, सामर्थ्यजनक एवं प्रोत्साही परिवेश, पेशेवर विकास के पथ, नेतृत्व के अवसर, स्वायत्तता एवं तंत्र पारदर्शिता के साथ-साथ विधि सहसंबंधित

पक्षकारों से अंतर्क्रिया के अवसर हर समय उपलब्ध रहने चाहिए, तब जाकर शिक्षक अपने पेशेवर विकास के सूचकों को न केवल समझ पाएँगे, बल्कि उन्हें अंगीकार कर, अपनी छवि को एक वृत्तिवान स्वरूप में तराश सकेंगे। पेशेवर स्तर को मानकोनुकूल बनाए रखने के लिए आज शिक्षक समाज में एक 'पेशेवर संस्कृति' को सृजित करने की ज़रूरत है, इसके लिए पेशेवर विकास के विविध पक्षों को व्यापक पैमाने पर प्रसारित कर, सतत व अक्षुण्ण स्वरूप में पेशेवर विकास का एक व्यापक व सुपरिभाषित कार्यक्रम विकसित करना चाहिए, तब जाकर कहीं हमारा शिक्षक समुदाय अद्यतन व समकालीन हो पाएगा।

पेशेवर विकास के मुख्य पथ

प्रत्येक पेशे में विकास के अनवरत पथ होते हैं, जिन पर संचलन कर पेशेवर व्यक्ति अपनी व संगठन की सफलता के आधार निर्मित करता है। शिक्षण पेशा ही क्या, कोई भी पेशा, बिना सतत शिक्षा, प्रशिक्षण एवं सीखने के अवसरों की उपलब्धता की स्थायी सफलता अर्जित नहीं कर सकता, क्योंकि इन प्रक्रमों के अभाव में अनुभव निर्माण की प्रक्रिया पूर्ण नहीं होगी। इसलिए आज की बुनियादी ज़रूरत यह है कि शिक्षकों के पेशेवर विकास के लिए न केवल उनके स्वयं के आत्म-निर्देशित क्रियाकलापों को प्रोत्साहित किया जाए, बल्कि उनके लिए अनवरत शिक्षा और प्रशिक्षण के पथों को भी प्रबंधित व विकसित किया

शिक्षकों के पेशेवर विकास के विविध पक्ष



जाए। चूँकि शिक्षण पेशे की सफलता का मानदंड उसकी गुणवत्तापरक दक्षता है। प्रकाश और सुमित्रा चौधरी (1994) के विश्लेषणात्मक अध्ययन, *एक्सपेंडिचर ऑन एजुकेशन—थ्योरी, मॉडल्स एंड ग्रोथ* से पता चलता है कि शिक्षकों की उत्पादकता (भारत के संदर्भ में) 30.91 है, जो औसत और सीमांत उत्पादकता से थोड़ी अधिक है, शिक्षक उत्पादकता के इस निष्कर्ष को देखते हुए उन्होंने शिक्षकों के पेशेवर विकास की प्रबल सिफारिश करते हुए कहा कि संपूर्ण गुणवत्तापरक दक्षता निर्माण की दृष्टि से शिक्षकों के लिए सतत विकास व सीखने के अवसरों को प्रबंधित किया जाए।

वर्तमान परिवेश के अनुकूलन स्तर को प्राप्त करने के लिहाज से शिक्षण पेशे में पूर्णता के पंख लगाने हेतु, हमें शिक्षकों के निर्धारित, आवश्यक

एवं अखंडित पथों को प्रबंधित करना होगा। शिक्षक सदैव आगे बढ़ें, इसके लिए हमें उनकी विभिन्न प्रकार की समस्याओं को दूर कर, उनके लिए खुशनुमा व विकासगामी मार्गों को तलाशना होगा, तब ही जाकर आज का शिक्षक अपनी वृत्ति की दृष्टि से पूर्ण निष्ठावान व फलदायी इकाई बन पाएगा। अपने पेशेवर विकास के लिए शिक्षकों को अपने सांस्कृतिक, भौतिक, भाषाई, जेंडर एवं तकनीकी पक्षों की चिंताओं एवं हीन भावनाओं से मुक्त होकर, लगातार सीखने की ओर प्रवृत्त होना होगा, साथ ही उन्हें अपने ज़मीनी स्तर के पूर्वाग्रहों व प्रतिष्ठा के मुद्दों से ऊपर उठकर, अपने पेशेवर मर्मों को केंद्र में रखकर, अपने निजी विकास और आत्म-छवि को प्रबल बनाना होगा, तब जाकर कहीं शिक्षक समुदाय में पेशेवर संस्कृति का वांछित

शिक्षकों के पेशेवर विकास के राजमार्ग

वृत्तिका-विकास के सतत अवसर एवं स्रोत

स्वयं द्वारा आत्म-निर्देशित स्रोत	सामूहिक सहभागिता आधारित नियोजित अवसर
<ul style="list-style-type: none"> • समकक्ष लोगों के साथ अंतर्क्रिया व साझेदारी • सतत अध्ययन व लेखन • बदलते शैक्षिक संदर्भों के प्रति जागरूकता • समय-समय पर आत्म-निरीक्षण व आकलन • कार्यशालाओं व संगोष्ठियों में सहभागिता • नेटवर्क लर्निंग व इंटरनेट का वृत्तिक प्रयोग • हितधारी वर्गों (स्टेक होल्डर्स) की माँगों के प्रति संवेदनशीलता • शिक्षण वृत्ति के मानक मूल्यों व राष्ट्रीय अपेक्षाओं का सतत मान व ज्ञान • आलोचनात्मक खोजबीन • बदलाव के प्रति सकारात्मकता • स्वाध्याय व सूचना स्रोतों से सतत जुड़ाव, सृजनात्मकता को समर्थन 	<ul style="list-style-type: none"> • अभिविन्यास पाठ्यक्रम • पुनश्चर्या पाठ्यक्रम • शिक्षा व शिक्षण से संबंधित विशेष कोर्स • दूरस्थ शिक्षा के कार्यक्रमों में सहभागिता • सेवारत प्रशिक्षण शिविर • केंद्र व राज्यों के प्रशिक्षण अभिकरणों के कार्यक्रमों में सहभागिता • वृत्तिक संघों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सहभागिता • शिक्षा बोर्ड एवं विश्वविद्यालयों के अकादमिक प्रशिक्षण केंद्रों के प्रोग्राम में सहभागिता • सामयिक शैक्षिक जन कार्यक्रमों के प्रशिक्षण शिविरों में सहभागिता

विकास हो पाएगा। इस दृष्टि से आगे दिए हुए चित्र के अनुसार वृत्तिक विकास के राजमार्गों को दिशा देनी होगी, जो कि एक आवश्यक प्रक्रम है —

शिक्षकों में पेशेवर विकास के लिहाज से उक्त स्रोतों का आवश्यकतानुसार प्रयोग कर एक ऐसे परिवेश को जन्म देना, जिससे प्रत्येक शिक्षक में दक्षता, हुनर, ज्ञान एवं आत्मविश्वास का स्तर इस स्तर तक बढ़ जाए कि वह निष्क्रिय ग्रहणकर्ता के स्थान पर सक्रिय सहभागी बन जाए। इस निमित्त शिक्षण संस्थानों में ऐसी गतिशील व्यवस्था प्रबंधित हो, जो विकास के विविध मार्गों के साथ मूल्यांकन व पृष्ठपोषण की विभिन्न प्रक्रियाओं को एक सतत स्वरूप प्रदान करे। स्पष्ट है कि इस प्रकार की गतिविधियों के कारण शिक्षकों में पेशेवर परिपक्वता के साथ सभ्यताकारी दृष्टिकोण विकसित होंगे। इस तथ्य की पुष्टि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् व अन्य संगठनों द्वारा ‘भारतीय शिक्षा की गुणवत्ता’ पर कराए गए अध्ययनों के निष्कर्षों से भी होती कि ‘शिक्षकों के पेशेवर विकास की दृष्टि से प्रबंधित सतत शिक्षा व प्रशिक्षण स्तर, विद्यार्थियों के अधिगम स्तर को प्रभावित करते हैं, जो कि सकारात्मक साक्ष्यों के मान से प्रबंधित थे।’ सार मंतव्य यह है कि शिक्षकों को अपने शिक्षकत्व को बनाए रखने के लिए, अपने पेशेवर विकास के राजमार्गों पर सतत चहलकदमी करनी होगी, तब जाकर उनका पेशा एक समाजोपयोगी उपागम बन पाएगा।

पेशेवर विकास के प्रमुख अवलोकन

शिक्षकों के पेशेवर विकास के समग्र कार्यक्रमों में ज्ञान-विज्ञान, सतत व सहज सीखना, पारदर्शिता,

स्वायत्तता एवं जवाबदेही जैसे घटक शामिल होने चाहिए। जिसके आलोक में शिक्षक बंधु स्वप्रेरित जिम्मेदारी का अहसास करते हुए, समाज को आवश्यक सेवार्थी प्रदान करते रहें। विचार दर्शन की इस धारा से स्पष्ट है कि शिक्षकों के पेशेवर विकास के कुछ निजी मुद्दे हैं, जिनका समाधान किए बिना शिक्षकों का पेशेवर विकास असंभव तो नहीं, लेकिन कठिन अवश्य है। इस दिशा के कुछ अनुभवजनित मुद्दों का परिचय इस प्रकार है—

- पेशेवर विकास कार्यक्रम के तहत शिक्षकों की वेशभूषा, हाव-भाव, वाणी की स्पष्टता, वाक्पटुता, विषयानुकूल भाषा व शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ सामान्य आदतें शिक्षण पेशे की छवि के अनुकूल होनी चाहिए।
- शिक्षकों के पेशेवर विकास के कार्यक्रमों में शिक्षकों की उपस्थिति व समयबद्धता का दृष्टिकोण पूर्ण परिपक्वता एवं वरीयता लिए हुए होना चाहिए।
- पेशेवर विकास की दृष्टि से शिक्षकों में अपनी वृत्ति के प्रति उत्साह, गर्व एवं प्रतिबद्धता का स्वरूप सदैव उच्च कोटी का रहना चाहिए।
- शिक्षक पेशे में अवकाश की बाहुल्यता रहती है, अतः अवकाश का प्रयोग पेशेवर विकास की धारणा से किया जाए।
- शिक्षकों के पेशेवर विकास के कार्यक्रमों में विद्यार्थियों के समग्र संदर्भों की समझ अवश्य समावेशित करनी चाहिए।
- विद्यालयों के परिवेश में पेशेवर विकास के मार्ग एवं स्रोतों के प्रति जागरूकता व पहलपन के

दृष्टिकोण को सतत स्वरूप में प्रबंधित करते रहना चाहिए।

- शिक्षण वृत्ति विकास के निर्देशनीय उपागमों को शैक्षिक संस्थान के तंत्रगम स्वरूप में प्रभावी व पहल दृष्टि से विकसित व प्रबंधित करना चाहिए।
- संस्थान में ऐसे सभी विमर्शों का सतत प्रसार एवं प्रबंधन करना चाहिए, जो शिक्षकों में सक्रियता एवं परस्पर सहयोग व निर्भरता का वातावरण पैदा करे।
- शैक्षिक संस्थानों में सूचना व संप्रेषण तकनीकी के साथ वृत्तिक विकास के मार्ग व अनुभवों को साझा करने वाली प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिले।
- यह देखना है कि शिक्षकों के पेशेवर विकास के कार्यक्रम, शिक्षकों की राष्ट्रीय दक्षताओं से तादात्म्य लिए हुए हैं या नहीं।
- यह देखना कि हमारे पेशेवर विकास कार्यक्रमों से शिक्षकगण स्वयं को गौरवावित, जिम्मेदार एवं स्वायत्त स्वरूप में महसूस कर रहे हैं या नहीं।
- पेशेवर शिक्षकों का संबंध संपूर्ण विद्यालय या तंत्र के साथ होना चाहिए, न कि एक कक्षा या एक विषय विशेष के साथ।
- पेशेवर शिक्षकों के लिए विद्यालयों की विविधता एक उत्सव होनी चाहिए, न कि भार।
- संस्थान के परिवेश में शिक्षण पेशे की संस्कृति व नीतिशास्त्र की समझ एवं सम्मान का दृष्टिकोण हमेशा परिलक्षित होना चाहिए।
- शिक्षकगण, शिक्षा के बहुआयामी उत्पादकीय कार्यों का महत्व समझें तथा अपने पेशे के समस्त कार्यों को शिक्षण का माध्यम बनाएँ।

- शिक्षण वृत्ति के समस्त कार्यों की केंद्रीय धुरी हितधारी वर्गों की आशा व आकांक्षा होनी चाहिए।
- शिक्षण वृत्ति संघों का नज़रिया दलगत राजनीति से परे हटकर, शिक्षकों के वृत्तिक विकास पर केंद्रित होना चाहिए।
- शिक्षकगण, समाज व अपनी वृत्ति के प्रति सजगता दिखाते हुए, अपने दायित्वों को केंद्र में रखकर बेहतर विश्व के लिए कार्य करें।
- शिक्षकों के पेशेवर विकास कार्यक्रमों में नवाचार, अनुसंधान, परिवर्तनशीलता, कार्य संस्कृति, टीम वर्क एवं सामयिक माँगों को उचित समर्थन व प्रबल स्थान मिलना चाहिए।

उक्त सभी अवलोकनीय बिंदुओं की रोशनी से साफ़ झलकता है कि शिक्षकों का पेशेवर विकास वर्तमान युग की एक महती जरूरत है, इसके अभाव में हमें शिक्षक तो मिल जाएँगे, लेकिन उनका शिक्षकत्व नहीं मिल पाएगा।

निष्कर्ष

शिक्षा राष्ट्र के विकास में एक विशिष्ट उत्पादनीय सेवा है, वह इसलिए कि शैक्षिक उत्पादों की गुणवत्ता पर ही संपूर्ण राष्ट्र का उत्पादकीय ढाँचा व उसका स्वरूप निर्भर करता है। किसी भी उत्पादन की गुणवत्ता का स्तर, उसके उत्पत्ति के साधन से परे हो ही नहीं सकता, अतः स्पष्ट है कि शिक्षा व उससे संदर्भित उत्पाद, शिक्षकों की गुणवत्ता के फलन हैं और शिक्षकों की गुणवत्ता उसके पेशेवर विकास के नज़रिये पर निर्भर करती है। इसके साथ-साथ आज शिक्षा में गुणवत्ता सुनिश्चित करने की माँग, बाज़ारीकरण, राष्ट्रीय दक्षता, प्रतिस्पर्धा

एवं भूमंडलीकरण जैसे अनेक सरोकार, इस धारणा को और भी अधिक महत्वपूर्ण व प्रभावी बना रहे हैं। इसलिए शिक्षकों के पेशेवर विकास की प्रक्रिया एक तरफ तो बाज़ारिक व सामायिक दृष्टिकोण की कसौटियों पर आधारित होनी चाहिए, तो वहीं दूसरी ओर इसे राष्ट्रीय एवं सामाजिक दायित्वों व अपेक्षाओं से अनुकूलित होना चाहिए। तब जाकर सही मायने में शिक्षकों के पेशेवर विकास की धारणा का उदय हो पाएगा।

इस प्रकार शिक्षकों की वर्तमान स्थिति और भावी आवश्यकताओं को देखते हुए, यह स्वयं में सिद्ध है कि शिक्षकों में पेशेवर चेतना का होना, आज के दूरगामी, परिवर्तनशील एवं तकनीकी से परिपूर्ण समाज की एक महती माँग है। इस संबंध में शिक्षा आयोग (1964–66), शिक्षक शिक्षा पर गठित राष्ट्रीय आयोग (1983–85), *राष्ट्रीय शिक्षा नीति* (1986), राममूर्ति समिति (1990), राष्ट्रीय

ज्ञान आयोग (2005), *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा— 2005*, शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009) के साथ राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् (एन.सी.टी.ई.) की लगभग सभी घोषणाओं आदि ने शिक्षकों के पेशेवर विकास की दृष्टि से सेवा-पूर्व व सेवाकालीन सतत शिक्षा एवं प्रशिक्षणों के सतत आयोजनों की सिफारिश के साथ शिक्षकों की समकालीन आवश्यकताओं के आधार पर रीफ्रेश कोर्सेज़, प्रशिक्षण संस्थान, मिलन मंच, शिक्षावकाश, संगोष्ठियों, कार्यशालाओं एवं दिशापरक फ़ॉलो-अप गतिविधियों के प्रावधानों पर बल दिया है। इन सारे संदर्भों व विवेचनाओं से यह तथ्य पुष्ट होता है कि शिक्षकों के पेशेवर विकास की अवधारणा एक घटना भर न होकर, एक आवश्यकता आधारित प्रक्रम है, जो शिक्षकों के ज्ञान, विकास, कौशल, दृष्टिकोण, अभिवृत्ति व उनकी प्रवृत्तियों एवं व्यवहारों को सामायिकता के पटल पर प्रबंधित करती है।

संदर्भ

- गर्ग, पी.पी. 1995. शिक्षा में आर्थिक विचारधारा, क्षमता, दक्षता और गुणवत्ता के प्रश्न. *परिप्रेक्ष्य*. न्यूपा, नयी दिल्ली. वर्ष 2, अंक 1, अप्रैल 1995. पृ. 61.
- तिवारी, शंकर प्रसाद. 2011. भारत के शैक्षिक सुधारों हेतु गठित प्रमुख आयोग/समितियाँ. *प्रतियोगिता दर्पण*. जनवरी 2011, आगरा (उ.प्र.). पृ.1081–1085.
- न्यूपा. 2007. होम स्कूलिंग— एक बेहतर विकल्प एवं जॉन हॉल्ट का शिक्षा दर्शन. *परिप्रेक्ष्य*. रा.शै.यो.प्रा. विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली. पृ. 83–90 एवं 133–140.
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय. *प्रारंभिक शिक्षकों के सेवाकालीन विकास के मुद्दों पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार की रिपोर्ट*. भुवनेश्वर, उड़ीसा, मानव संसाधन विकास मंत्रालय. नयी दिल्ली.
- राजस्थान बोर्ड. 2011. शिक्षा का अधिकार—2009. *राजस्थान बोर्ड शिक्षण पत्रिका*. अजमेर. पृ.सं. 2.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा—2005*. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली. पृ.115.

- लोढ़ा, जितेन्द्र. 2005. शैक्षिक प्रशासन एवं गुणात्मक शिक्षा की सफलता का मुख्य आधार — शिक्षकों का वृत्तिक विकास. *नया शिक्षक*. मा.शि. निदेशालय, बीकानेर, राजस्थान. पृ. 53.
- शर्मा, भानु. 2001. शिक्षकों का वृत्तिक विकास. *विद्यामेघ मासिक पत्रिका*. मेरठ, अंक 56, वर्ष 7, अक्टूबर 2001. पृ. 58.
- श्री प्रकाश और सुमित्र चौधरी. 1994. *एक्सपेंडिचर ऑफ़ एजुकेशन— थ्योरी, मॉडल्स एंड ग्रोथ*. न्यूपा, नयी दिल्ली. पृ. 310.
- सिंह, ब्रिजेश. 2018. पेशेवर शिक्षक के मायने क्या हैं? *एजुकेशन मिरर*. 26 मई, 2018.
- सिन्हा, शरद और जितेन्द्र कुमार लोढ़ा. 2009. शैक्षिक उत्कर्ष के लिए गुणवत्ता में सुधार की लक्ष्यपरक प्रक्रिया. *परिप्रेक्ष्य*. न्यूपा, नयी दिल्ली. वर्ष 16, अंक 1, अप्रैल 2009. पृ.27.

विद्यालय निरीक्षण, अनुश्रवण एवं अनुसमर्थन

केवलानंद काण्डपाल*

गुरुदेव रवींद्र नाथ टैगोर ने एक बार कहा था कि एक शिक्षक वास्तव में तब तक नहीं पढ़ा सकता है जब तक कि वह निरंतर सीखता न रहे। एक दीपक दूसरे दीपक को तब तक प्रकाशमान नहीं कर सकता जब तक कि वह स्वयं नहीं जल रहा हो। इससे शिक्षक की सतत शिक्षा की ज़रूरत को समझा जा सकता है। शिक्षकों के शिक्षण-प्रशिक्षण के अतिरिक्त जो महत्वपूर्ण बात शिक्षकों के कार्य-प्रदर्शन पर गहन असर डालती है, वह यह है कि शिक्षकों के अनुश्रवण एवं अनुसमर्थन की क्या-क्या प्रक्रियाएँ वास्तव में अपनाई जा रही हैं। विगत 11 वर्षों से भी अधिक समय से ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान में कार्यरत होने के दौरान राज्य (उत्तराखंड) में और विशेष रूप से जनपद में विद्यालय छापों, निरीक्षण एवं अनुश्रवणों के बारे में सजग अवलोकन के आलोक में गहन मंथन या यूँ कह सकते हैं कि गहन पीड़ा ने निरंतर इस बात के लिए प्रेरित किया कि इस बारे में विद्वत् समुदाय के समक्ष विचारों को साझा किया जाए। किसी विद्यालय का निरीक्षण, छापा या अनुश्रवण जो कुछ भी हो, यह विद्यालय को मदद करने एवं शिक्षक को सशक्त करने के क्रम में ही होना चाहिए। इस आलेख के माध्यम से मेरे पास 'विद्यालय अनुश्रवण एवं अनुसमर्थन' के बारे में अपने विचार रखने का अवसर है और यह एक तरह से शुरुआती विचार हो सकता है, परंतु महत्वपूर्ण बात यह है कि इस मुद्दे पर लगातार और गहन विमर्श किया जाए। विद्यालयों को छापों से मुक्ति मिले और शिक्षक को औचक निरीक्षणों में शर्मिंदगी से न गुजरना पड़े, इसके लिए ज़रूरी है कि शिक्षा के सभी स्तरों पर विद्यालय अनुश्रवण एवं अनुसमर्थन को लेकर वैचारिक स्पष्टता हो। नीतिगत स्तर पर इसका संज्ञान लिया जाए। वस्तुतः शिक्षा तंत्र का पूरा ताम-झाम विद्यालय को मदद पहुँचाने एवं शिक्षक को सशक्त करने के लिए ही तो है। इसी मंशा से विद्यालय अनुश्रवण एवं अनुसमर्थन के परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर यह लेख लिखने का प्रयास किया गया है। इस लेख में उत्तराखंड में होने वाले विद्यालय अनुश्रवण एवं अनुसमर्थन के अंतर्गत विद्यालय में छापे, निरीक्षण एवं अनुश्रवण की वस्तुस्थिति रखने का प्रयास किया गया है।

सार्वजनिक शिक्षा किसी भी लोकतांत्रिक देश की महत्वपूर्ण ज़रूरतों में से एक ज़रूरत होती है। लोकतंत्र के विकास के लिए विवेकशील नागरिकों की ज़रूरत होती है और सार्वजनिक शिक्षा से यह उम्मीद की जाती है कि वह अपने नागरिकों में विवेकशीलता विकसित करेगी। लोकतंत्र में शिक्षा से यह भी उम्मीद

की जाती है कि वह अपने नागरिकों का हुनर इस तरह से विकसित करेगी कि ज़रूरत पड़ने पर वे अपने विवेक का उचित इस्तेमाल कर सकें। इसलिए शिक्षण एक गंभीर सामाजिक कर्म है। इस गंभीरता के अनुपालन की अपेक्षा न केवल शिक्षण कार्य कर रहे व्यक्ति से, वरन् उन सभी हितधारकों से की जानी

चाहिए, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा प्रणाली से जुड़े हैं। कोठारी आयोग (1964-66) ने अपनी रिपोर्ट के शुरुआती हिस्से में इसको रेखांकित करते हुए लिखा है, “भारत का भविष्य इसकी कक्षाओं में निर्मित हो रहा है।” (The destiny of India is now being shaped in her classroom)। इस कथन के गंभीर शैक्षिक निहितार्थ हैं और यह विचार देश के भविष्य निर्माण में शिक्षकों की भूमिका को रेखांकित करता है। आज़ादी के दौर में ही राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी ने शिक्षा तंत्र में शिक्षकों की भूमिका को रेखांकित करते हुए कहा था, “मैं हमेशा से ही महसूस करता रहा हूँ कि एक विद्यार्थी के लिए सर्वोत्तम पाठ्यपुस्तक शिक्षक है।” किसी भी शिक्षा प्रणाली में शिक्षक की अहम भूमिका होती है और लोकतांत्रिक देश के संदर्भ में तो यह भूमिका और अधिक गहन हो जाती है। शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक एक स्वतंत्र एजेंसी है और यह स्वतंत्रता अकादमिक होनी चाहिए। शिक्षा प्रणाली में नीतियाँ, अधिनियम, प्रशासन तंत्र एवं अनुश्रवण तंत्र सभी शिक्षक एजेंसी को मज़बूती प्रदान करने के लिए होते हैं, वस्तुतः यह होना ही चाहिए। शिक्षक एजेंसी को मज़बूती देने के लिए, शिक्षक की तैयारी के क्रम में शिक्षक प्रशिक्षण/शिक्षा एक महत्वपूर्ण उपक्रम है। इस क्रम में शिक्षक शिक्षा पर एक विहंगावलोकन करने की दृष्टि से औपनिवेशिक काल एवं उसके बाद स्वतंत्र भारत के दौर को मिलाकर देखें तो शिक्षक शिक्षा/प्रशिक्षण के इतिहास को तीन चरणों में क्रमबद्ध किया जा सकता है।

प्रथम चरण — प्यूपिल-टीचर प्रणाली—

औपनिवेशिक काल के प्रारंभ होने के पहले एवं इसके शुरुआती वर्षों तक शिक्षा एवं विशेषकर शिक्षक शिक्षा के लिए व्यवस्थित प्रणाली का अभाव नज़र आता है। इस कारण शिक्षक तैयार करने की ऐसी प्रणाली लागू की गई जिसे मॉनीटर प्रणाली भी कहा गया। इस प्रणाली में विद्यार्थियों के छोटे-छोटे समूह की निगरानी अपेक्षाकृत होशियार माना जाने वाला विद्यार्थी करता था जो समूह को सीखने में मदद करता था तथा इसकी रिपोर्टिंग मुख्य कक्षा शिक्षक को करता था। कक्षा शिक्षक की अनुशांसा के बाद ऐसा मॉनीटर शिक्षक बनने के योग्य मान लिया जाता था। यह क्रम सन् 1800 से 1822 तक चलता रहा। वास्तव में, इस अवधि में शिक्षक शिक्षा एवं अनुसमर्थन के लिए किसी भी प्रकार का संस्थागत स्वरूप मौजूद ही नहीं था।

द्वितीय चरण — सर मुनरो द्वारा अपने मिनिट्स में (13 दिसंबर, 1923) में शिक्षक शिक्षा में सुधार के लिए कुछ विचार रखे गए थे। जून 1926 में स्कूली शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए पहला स्कूल मद्रास (वर्तमान में चेन्नई) में शुरू किया गया, तब इसे ‘नॉर्मल स्कूल’ कहा गया। उपनिवेश काल के शुरुआती दौर से ही शिक्षा को औपनिवेशिक हित-साधन के रूप में देखा गया। इसके लिए ऐसे शिक्षकों को तैयार करने पर ज़ोर दिया गया, जो कठोर अनुशासन के द्वारा विद्यार्थियों को एक ऐसे साँचे में ढाल सकें जो औपनिवेशिक शासन के आज़ापालक बन सकें। अतः इस दौर में शिक्षकों के कठोर प्रशिक्षण को शिक्षक तैयार करने की प्रक्रिया के रूप में अपनाया गया। इस शिक्षक-प्रशिक्षण का मुख्य ज़ोर कक्षा-कक्ष में अनुशासन, सीखने-सिखाने में अभ्यास एवं रटंत संबंधी

कौशलों के विकास पर था। वस्तुतः उपनिवेश काल में शासकों का मुख्य ध्येय ऐसे व्यक्ति का निर्माण करना था जो कोई प्रश्न उठाए बगैर दिशा-निर्देशों की अनुपालना करे। इस दौर के नॉर्मल स्कूलों (जो बुनियादी शिक्षक की तैयारी के स्कूल थे।) के कठोर अनुशासन की बहुत सारी कहानियाँ आज भी हमें भयाक्रांत कर सकती हैं। शिक्षकों/विद्यालयों के निरीक्षण की कठोर प्रणाली शिक्षकों/विद्यालयों को किसी प्रकार का अनुसमर्थन देने के बजाय भयादोहन का वातावरण संचित करती थी।

तृतीय चरण — शिक्षक शिक्षा—स्वतंत्रता के बाद के दौर में शिक्षक शिक्षा को शिक्षक प्रशिक्षण के स्थान पर शिक्षक शिक्षा के रूप में देखा जाने लगा। इसमें शिक्षक की तैयारी के साथ-साथ शिक्षक के पेशेवर जीवन में सतत प्रशिक्षण को भी इसका अभिन्न अंग माना जाने लगा। इसमें शिक्षकों की शिक्षण से संबंधित समस्याएँ, शिक्षण की नवीनतम विधाओं, जैसे— रचनात्मक शिक्षण आदि, नवाचारों को शामिल किया जाने लगा। शिक्षक शिक्षा के एक ऐसी आजादी के बाद के दौर एवं एकदम हाल के दौर को मिला-जुलाकर देखा जा सकता है। इसके शुरुआती चरण में स्वतंत्र भारत में भारतीय संविधान के आलोक में देखे गए भावी समाज के सपने को पूरा करने के लिए जरूरी था कि शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा को खास तरजीह दी जाती, प्रारंभिक शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाया जाता। कई कारणों से ऐसा हो नहीं पाया। मौलिक अधिकार के बजाय यह अनुच्छेद 45 में नीति-निर्देशक सिद्धांत ही बन सका। **राष्ट्रीय शिक्षा नीति— 1986** एवं उसकी कार्य योजना 1992 में शिक्षक शिक्षा एवं शिक्षकों को अनुसमर्थन देने के

लिए ज़िला स्तर पर ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान की संकल्पना की गई। हालाँकि बाद के वर्षों में ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान की क्षमता संवर्द्धन के लिए प्रयासों के अभाव में ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान भी शिक्षकों/विद्यालयों को अकादमिक अनुसमर्थन की भूमिका में बहुत प्रभावी नहीं हो पाए, यह एक सर्वज्ञात तथ्य है। 1973 में शिक्षक शिक्षा के संबंध में सलाहकारी संस्था के रूप में राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् की स्थापना की गई। 1993 में इसे संवैधानिक दर्जा भी प्राप्त हो गया। इसका मुख्य फ़ोकस शिक्षक शिक्षा को विनियमित करना रहा है। विगत हाल के अनुभव बताते हैं कि यह संस्था शिक्षक शिक्षा संस्थानों की मान्यता के मकड़जाल में इस कदर उलझ गया है कि शिक्षक के सतत व्यावसायिक विकास एवं अनुसमर्थन के मुद्दे पर ध्यान देने का न तो वक्त है, न ही दृष्टि। 2009 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम (यह स्कूली शिक्षा में संलग्न निजी विद्यालयों पर पूरी तरह से लागू नहीं होता। अधिनियम के अंतर्गत नामांकित 25 प्रतिशत बच्चों के संबंध में ही प्रभावी है। दूसरा—पूर्व प्राथमिक शिक्षा के संबंध में कोई विधिक व्यवस्था नहीं देता है, तो आधे-अधूरे रूप में ही सही) लागू हुआ। इसमें शिक्षक की योग्यता, उसके कार्य-दायित्वों के बारे में नियम बनाए गए, परंतु शिक्षक/विद्यालयों को अनुसमर्थन देने वाली संस्थाओं, जैसे— ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान की भूमिका के बारे में स्पष्ट दिशा-निर्देशों की कमी साफ़ नज़र आती है। 2009 में ही शिक्षक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में मानवीय दृष्टिकोण वाले शिक्षकों के विकास की बातें की गईं, परंतु इनके धरातल में

उतरने की अभी भी प्रतीक्षा है। इधर हाल ही के वर्षों में ब्लॉक/संकुल संदर्भ व्यक्ति के रूप में शिक्षकों/विद्यालयों को अनुसमर्थन देने वाली एक एजेंसी के रूप में परिकल्पना की गई है। यद्यपि DPEP (District Primary Education Programme) एवं बाद में ब्लॉक/संकुल समन्वयकों की भूमिका सूचनाओं के संग्रहकर्ता/प्रदाता की ही अधिक रही है। शिक्षक शिक्षा एवं शिक्षकों/विद्यालयों को अनुसमर्थन के इस संक्षिप्त विहंगावलोकन के बाद हम विद्यालय अनुश्रवण एवं शिक्षक अनुसमर्थन के मूल मुद्दे पर लौट सकते हैं।

विद्यालय में बच्चों के बीच शिक्षक की विश्वसनीयता एक अहम घटक है। वस्तुतः विद्यालय में शिक्षक ही वह व्यक्ति है जिस पर बच्चे पूर्णतः विश्वास कर सकते हैं कि वह जो कुछ भी शैक्षणिक प्रक्रियाएँ/गतिविधियाँ करवा रहे हैं, वह बच्चों के सीखने में मददगार हैं। ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में, जब भी बच्चों को किसी मदद की ज़रूरत हो, जिज्ञासा के क्रम में किसी सूचना, तथ्य एवं जानकारी के लिए शिक्षक एक विश्वसनीय सत्ता है। हम अपने बच्चे को किसी भी व्यक्ति के पास एक पल के लिए छोड़ने से पहले सौ बार सोचते हैं, जबकि विद्यालय में किसी शिक्षक की निगरानी में बच्चों को भेजते हैं तो यह सोचकर सुकून से भर जाते हैं कि हमारा बच्चा न केवल सुरक्षित है, वरन् इस अवधि में बच्चा कुछ-न-कुछ सीख भी रहा है, इस विश्वास से भरे रहते हैं। शिक्षक एजेंसी की विश्वसनीयता बहुत-से घटकों पर निर्भर करती है। शिक्षक अपने अध्यापन पेशे को किस तरह से व्यवहार में ला रहे हैं, यह तो महत्वपूर्ण है

ही, परन्तु इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि समय-समय पर विद्यालय में आने वाले प्रशासकीय अधिकारी, निरीक्षणकर्ता, अनुश्रवण कार्मिक, अभिभावक एवं समुदाय शिक्षक से किस तरह का बर्ताव करते हैं। इस व्यवहार के विविध आयाम हो सकते हैं। मसलन विद्यालय की खामियों को ढूँढ़ निकालना और इसके लिए किसी भी तरह से शिक्षक को ज़िम्मेदार ठहरा देना, विद्यालय/शिक्षक को अनुश्रवण की कोई पूर्व सूचना न देना व विद्यालय में पहुँचकर विद्यालय में एक तरह से हड़बड़ी एवं घबराहट का माहौल बनाना (शिक्षा प्रशासन की भाषा में इसे छापा मारना बताया जाता है, इसकी आगे चर्चा करेंगे।), किसी एक-पक्षीय शिकायत की इकतरफ़ा जाँच के क्रम में विद्यालय निरीक्षण, बहुत बार विद्यालय निरीक्षण के क्रम में ऐसे अनपेक्षित समय में विद्यालय पहुँच जाना (इस तरह के मामले में सड़क के नज़दीक के विद्यालय हमेशा ही दुष्चिन्ता में रहते हैं, सुविधा के लिहाज़ से इन विद्यालयों में उच्चाधिकारियों, जनप्रतिनिधियों के पहुँचने की संभावना एवं बारंबारता सबसे अधिक होती है।), ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के अकादमिक अभिकर्मियों के द्वारा विद्यालय अनुश्रवण के क्रम में विद्यालय आगमन (यद्यपि इनके विद्यालय में होने से शिक्षक थोड़ा बहुत आश्वस्त रहते हैं कि अकादमिक मामलों में कुछ-न-कुछ मदद तो मिल ही जाएगी, परन्तु यहाँ पर भी अनुश्रवण व्याख्या की थोड़ी-बहुत ही सही, चिन्ता तो रहती ही है।), शिक्षक एवं समुदाय के व्यक्ति यदा-कदा विद्यालय पधारते भी हैं तो किसी शिकायत के क्रम में या फिर किसी ऐसे मामले में जिसमें उन्हें लगता है कि शिक्षक ही

इस मामले का सूत्रधार है। इस तरह से इन सभी आगमनों से विद्यालय/शिक्षक की विश्वसनीयता पर नकारात्मक असर जरूर पड़ता है।

एक अन्य प्रश्न है जो शिक्षक की पहचान एवं हैसियत से जुड़ा संवेदनशील मामला है। हमारे देश की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षक सत्ता पदनुक्रम में सबसे निचले पायदान पर मौजूद कार्मिक है, जिसे शिक्षा प्रणाली की किसी भी असफलता के लिए ज़िम्मेदार ठहराना बहुत आसान है (यद्यपि यह तथ्य देश के विगत कालखंड के लिए भी उतना ही सही है)। वर्तमान में सरकारी प्रारंभिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की घटती संख्या के लिए शिक्षक को ज़िम्मेदार ठहराया जा रहा है और नीतिगत स्तर पर कहा जा रहा है कि अति न्यून विद्यार्थी नामांकन वाले विद्यालयों को बंद करके उनका निकटवर्ती विद्यालयों में संलयन (merge) किया जाएगा। यह एक तरह से शिक्षकों का भयादोहन है। वस्तु स्थिति इससे भिन्न है। इस संदर्भ में एक बहुत ही महत्वपूर्ण तथ्य है कि जनपद के 592 राजकीय प्राथमिक विद्यालयों में से 250 से अधिक विद्यालय ऐसे हैं जो एकल शिक्षक द्वारा चलाए जा रहे हैं। जनपद के कतिपय संकुलों में जितने सरकारी प्राथमिक विद्यालय हैं, उतनी संख्या में शिक्षक नहीं हैं। सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालयों से शिक्षकों की व्यवस्था करके सरकारी प्राथमिक विद्यालय संचालित किए जा रहे हैं। जनपद बागेश्वर (उत्तराखंड) के अलावा राज्य के अन्य जनपदों में भी कमोवेश यही स्थितियाँ हैं।

अभिभावकों एवं समुदाय के लोगों से बातचीत करने पर दूसरी बात सामने आती है। उनका कहना

है कि सरकारी विद्यालयों से निकालकर हम अपने बच्चे निजी विद्यालयों में इसलिए भेज रहे हैं कि सरकारी विद्यालयों में प्रत्येक कक्षा हेतु शिक्षक ही नहीं होते। सरकारी स्कूलों में एक शिक्षक या बहुत कम विद्यालयों में दो शिक्षक हैं। ऐसे में हमारा बच्चा क्या पढ़ पाएगा? निजी विद्यालयों में कम-से-कम प्रत्येक कक्षा के लिए हर वक्त एक शिक्षक तो है। यह तथ्य इस बात से भी पुष्ट होता है कि इधर हाल ही में सरकारी आदर्श प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या आश्चर्यजनक रूप से बढ़ी भी है। सरकारी आदर्श प्राथमिक विद्यालयों में भौतिक सुविधाओं में कोई अंतर नहीं है, अंतर है तो सिर्फ़ इस बात का कि वहाँ पर प्रत्येक कक्षा एवं विषय के लिए शिक्षक उपलब्ध हैं। इससे एक बात स्पष्ट होती है कि सरकारी विद्यालयों में बच्चों का नामांकन कम होना शिक्षकों के कारण नहीं है, वरन् शिक्षकों की कमी इसका कारण है। इस प्रकार से उन परिणामों के लिए भी शिक्षक को ज़िम्मेदार ठहराना जिसके लिए वह ज़िम्मेदार ही नहीं है, शिक्षक की हैसियत पर नकारात्मक असर डालते हैं, समुदाय में उसकी पहचान को प्रभावित करते हैं। कोई विद्यालय केवल विद्यालय भवन, विद्यार्थियों एवं शिक्षकों से मिलकर नहीं बनता है, इसके अलावा शिक्षक की विश्वसनीयता, शिक्षा प्रणाली में शिक्षक की हैसियत एवं शिक्षक एवं बच्चों का आपसी विश्वास किसी विद्यालय को सही अर्थों में विद्यालय बनाते हैं।

जैसा कि इस लेख के शुरुआती हिस्से में कहा गया है कि सरकारी शिक्षा प्रणाली के सारे ताम-झाम विद्यालय की मदद के लिए हैं, शिक्षक को अनुसमर्थन देने के लिए हैं। सरकारी शिक्षा प्रणाली

अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हो, यह सभी की सामूहिक जवाबदेही है, न केवल शिक्षक की। तमाम शिक्षा अधिकारियों, जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान अभिकर्मियों एवं जन प्रतिनिधियों की विद्यालय में मौजूदगी शिक्षक के मनोबल को बढ़ाने में मददगार होनी चाहिए, उसकी अकादमिक समस्याओं/आवश्यकताओं को संबोधित करने का उपक्रम होनी चाहिए। क्या वास्तव में ऐसा हो पाता है? इसकी जाँच-पड़ताल से पहले यह विश्लेषण करना उपयुक्त होगा कि वर्तमान में विद्यालयों में विभिन्न आगमनों के प्रारूप क्या-क्या हैं? विद्यालयों में उनके व्यवहार के कौन-कौन से प्रारूप हैं? शिक्षक के प्रति उनका रवैया किस तरह का होता है? इसकी अकादमिक पहलू से जाँच-पड़ताल करने की आवश्यकता है। इस जाँच-पड़ताल के बाद हमें यह जानने-समझने में मदद मिल सकेगी कि विद्यालय अनुश्रवण एवं विद्यालय में शिक्षक को अनुसमर्थन देने का सबसे उपयुक्त तरीका क्या हो सकता है? विद्यालय के निरीक्षण एवं अवलोकन के जो तरीके प्रचलित हैं, उनमें छापा मारना, औचक निरीक्षण, अनुश्रवण आदि प्रमुख हैं। इनमें आकस्मिकता का पुट कमोवेश सभी में रहता है, परंतु भय सृजन की तीव्रता में जरूर अंतर दिखाई पड़ता है। अतः वर्तमान में विद्यालय निरीक्षण के जो तौर-तरीके देखने-सुनने में आते हैं, उनमें कुछ प्रमुख निम्न हैं —

1. छापा मारना — विद्यालय में बिना किसी पूर्व सूचना के विद्यालय निरीक्षण के लिए पहुँचना एक आम अभ्यास है और इसे आकस्मिकता के भयादोहन के कारण ‘छापा मारना’ के

प्रचलित नाम से अधिक जाना जाता है। यह राज्य में एक सामान्य प्रशासनिक अभ्यास है, संभवतः देश के अन्य राज्यों में कमोवेश यही स्थिति है। विद्यालय निरीक्षण के नाम पर छापा मारना एक बहुत प्रचलित विधि है। वस्तुतः छापा-मार एक युद्ध रणनीति है, जिसमें दुश्मन सेना पर उस समय आक्रमण किया जाता है जब असावधान हो। निरीक्षण की इस विधि में प्रायः समय का चयन भी इस प्रकार से किया जाता है कि शिक्षक वहाँ उपलब्ध हो। यह समय सामान्यतः विद्यालय की शुरुआत के 10–15 मिनट या विद्यालय बंद होने के पूर्व 10–5 मिनट होता है। इसमें इतनी अधिक गोपनीयता बरती जाती है कि उस ब्लॉक के, संकुल के किसी भी जिम्मेदार व्यक्ति को इसकी जानकारी तक नहीं रहती। इसका मूल उद्देश्य किसी शिक्षक को दण्डित करके अन्य शिक्षकों में भय का माहौल पैदा करना है। इस तरह के स्कूल-छापा के बाद अगले ही दिन शिक्षकों को दण्डित करने (यथा स्पष्टीकरण, वेतन रोकना, सस्पेंड करना) की खबरें समाचार-पत्रों की सुर्खियाँ बन जाती हैं। इसके प्रशासनिक मकसद चाहे जो भी हों, (यत्किंचित पूरे भले ही होते हों) शिक्षक एवं विद्यालयों को इसका कुछ भी अकादमिक लाभ मिलता हो, ऐसा कोई उदाहरण देखने-सुनने में तो नहीं आता है। इसके विपरीत विद्यालय एवं शिक्षक की सारी ऊर्जा मामले का निराकरण करने में खत्म होती है, सो अलग। इस प्रक्रिया से एक बात तो स्पष्ट है कि इसका मकसद शिक्षक की मदद करना तो नहीं होता।

इसका असर भी बहुत सकारात्मक नहीं देखा गया है, इसमें जो प्रशासनिक ऊर्जा एवं समय नष्ट होता है, उसके एवज में विद्यालय को किसी प्रकार की अकादमिक मदद नहीं मिलती है। उल्टा होता यह है कि शिक्षक ऐसा सूचना तंत्र विकसित करने का प्रयास करने लगते हैं कि किसी तरह से भी छापे की पूर्व सूचना मिल जाए। यह प्रक्रिया तो शिक्षकों को एक विशेष किस्म के व्यवहार को बरतने को प्रेरित करती है, विद्यालय/शिक्षक को किसी भी प्रकार की अकादमिक मदद देना इसका मकसद भी नहीं होता और न ही वह मिल पाती है। औपनिवेशिक काल (संभवतः यह बहुत सही उदाहरण न हो।) की शैक्षिक प्रणाली के अध्ययन में भी हमें छापामारी के बहुत विरल उदाहरण मिलते हैं। विद्यालय निरीक्षकों के निरीक्षण दौर के भयावह विवरण सुनने को मिलते हैं, परंतु इस प्रकार के दौरों की पूर्व सूचना समय रहते विद्यालयों को दी जाती थी, जिससे विद्यालय निरीक्षण आवश्यकताओं के अनुरूप समुचित तैयारी कर सकें।

2. **आकस्मिक/औचक निरीक्षण** — छापामारी की तुलना में इसमें भयादोहन का तत्व कुछ कम हो सकता है, परंतु बिना किसी पूर्व सूचना के विद्यालयों में इस प्रकार का आगमन विद्यालय में एक विशेष किस्म की हड़बड़ी/घबराहट पैदा कर देता है। सड़क मार्ग से सहज पहुँच वाले विद्यालयों में इस प्रकार के आकस्मिक/औचक निरीक्षण बहुतायत में देखने-सुनने में आते हैं। इस प्रकार के निरीक्षण के बहुत सारे स्तर देखने-सुनने में आते हैं, जैसे— सीधे कक्षा-कक्ष

में पहुँचकर बच्चों से कुछ प्रश्न पूछना (बहुधा ये प्रश्न सूचनात्मक किस्म के होते हैं।) और बच्चों द्वारा सही जवाब न देने पर बच्चों के शैक्षणिक स्तर में गिरावट या उनका निम्न स्तर घोषित करके शिक्षक की पहचान एवं हैसियत को कमजोर बताते हुए चेतावनी जारी करना। सीधे कक्षा-कक्ष में प्रवेश करके, शिक्षक की अनुमति के बगैर बच्चों को पढ़ाने का उपक्रम करना। यह प्रारूप शिक्षक की हैसियत को बहुत ही नकारात्मक ढंग से प्रभावित करता है। यह बच्चों के समक्ष इस तथ्य को प्रस्थापित करता है कि शिक्षक को ढंग से पढ़ाना नहीं आता है, इसीलिए आगंतुक, शिक्षक को कुछ नए ढंग से पढ़ाने-लिखाने की बात सिखा रहे हैं। इस प्रकार आगंतुक, बच्चे जिस शिक्षक पर अभी तक जो विश्वास कर रहे होते हैं, उस विश्वास की नींव को हिला देता है। इसका एक और विकृत रूप देखने में आता है, जब कक्षा में बच्चों के सामने ही शिक्षक से सवाल पूछकर उसके ज्ञान को जाँचने-परखने का काम किया जाता है, शिक्षक के लिए यह बहुत ही शर्मिंदगी की स्थिति होती है। उन बच्चों के सामने यह सब घटित होता है, जो यह विश्वास करते हैं कि पढ़ाने-लिखाने के क्रम में वह व्यक्ति एक विश्वसनीय स्रोत है। यह एक गंभीर प्रश्न है। यह तो पूरी तरह से शिक्षक/अध्यापिका की हैसियत/पहचान को संकट में डालने वाला व्यवहार ही माना जाएगा। इस प्रकार के व्यवहार से शिक्षा के कौन-से उद्देश्य प्राप्त किए जा सकते हैं? यह समझ से परे है।

3. निरीक्षण जाँच — यह प्रायः किसी शिकायत/विवाद के मामले में जाँच-पड़ताल के क्रम में किया जाता है। इसमें मूल भावना तो यही छुपी रहती है कि विद्यालय/शिक्षक प्रथम दृष्टया दोषी तो है ही। जाँच के दिन उनको अपना पक्ष रखना है, उनके पक्ष से संतुष्ट न होने पर, दोष सिद्ध मानते हुए प्रशासनिक कार्यवाही होना तय है। यदि विद्यालय/शिक्षक दोषी है तो इस प्रकार की जाँच-पड़ताल का औचित्य है भी। ऐसे बहुत-से वास्तविक उदाहरण देखने-सुनने में आए हैं कि शिक्षक तटस्थ भाव से एवं पूर्ण मनोयोग से अपना काम कर रहे हैं, परंतु कुछ लोगों को यह तटस्थता अनुकूल नहीं बैठती है। इस प्रकार की जाँच, समुदाय में शिक्षक की पहचान को प्रभावित करती है। यदि यह जाँच किसी विश्वसनीय आधार पर नहीं की गई है, तब भी शिक्षक की साख पर इसका गहरा असर पड़ता है, जिसकी भरपाई करने में शिक्षक को न जाने कितना समय लगेगा और वह हो भी पाएगी, यह भी निश्चित नहीं है। इस प्रकार के निरीक्षण में एक अच्छी बात यह है कि विद्यालय/शिक्षक को आगंतुक के मंतव्य की पूर्व सूचना होती है और अपना पक्ष रखने की तैयारी के लिए कुछ समय भी मिल जाता है।

4. सामान्य निरीक्षण — यह ऊपर दिए गए तरीकों से थोड़ा नरम किस्म का होता है। इस प्रकार के निरीक्षण की पूर्व सूचना दी जाती है। इसमें और औचक निरीक्षण में एक फ़र्क है। औचक निरीक्षण की प्रकृति ही अचानक

उपस्थित होकर हतप्रभ कर देने की होती है, जबकि सामान्य निरीक्षण में विद्यालय/शिक्षक को संकेत दिया जाता है कि आपके विद्यालय में निरीक्षण पर आना है। यद्यपि यह स्पष्ट नहीं किया जाता कि विद्यालय में वास्तव में निरीक्षणकर्ता देखना क्या चाहते हैं? लेकिन इस प्रकार के निरीक्षण को एक प्रकार से सकारात्मक माना जा सकता है कि विद्यालय के बेहतर प्रयासों का निरीक्षण होना है और विद्यालय/शिक्षक इसी दृष्टिगत अपनी तैयारी अपने तरीके से करते हैं। यह तरीका विद्यालय/शिक्षक के लिए मददगार सिद्ध हो सकता है, यदि अनुश्रवणकर्ता निरीक्षण से पूर्व ही स्पष्ट कर दें कि निरीक्षण के दिन वह विद्यालय/शिक्षक के कौन-कौन से कामों एवं बातों का निरीक्षण करना चाहेंगे। इससे निरीक्षण में आकस्मिकता का तत्व भले ही कम हो जाएगा, परंतु विद्यालय/शिक्षक उपलब्ध समय में उन विशेष कामों/बातों में और बेहतर करने का प्रयास कर सकते हैं। वास्तव में, होना यह चाहिए कि निरीक्षण तिथि के साथ-साथ किन चीजों का निरीक्षण होगा? इसकी पूर्व में ही विद्यालय/शिक्षक को सूचना दी जाए। बच्चों के अधिगम स्तर को जानने में रुचि है तो पर्याप्त समय रहते विद्यालय/शिक्षक को संप्रेषित कर दिया जाए कि निरीक्षण दिवस को बच्चों के अधिगम स्तर के बारे में कक्षा वार एवं विषयवार किन-किन बातों को जानने में निरीक्षणकर्ता की रुचि है? यकीनन इसके लिए निरीक्षणकर्ताओं को भी सम्यक तैयारी

की आवश्यकता होगी। इस प्रकार के निरीक्षण विद्यालय/शिक्षकों को अपने सकारात्मक पक्ष को सामने लाने का अवसर सृजित कर सकते हैं। ऐसे निरीक्षणों में विद्यालय को अकादमिक मामलों में किसी प्रकार की मदद या अनुसमर्थन तो नहीं मिल पाता है, हाँ, इतना जरूर होता है कि निरीक्षणकर्ता विद्यालय की सकारात्मक प्रगति में श्रेय लेने का कोई अवसर नहीं छोड़ते हैं। जनपद बागेश्वर के राजकीय आदर्श प्राथमिक विद्यालय, कपकोट एवं जनपद चमोली के राजकीय आदर्श प्राथमिक विद्यालय, स्यूणी, में अधिकांश निरीक्षण इसी मंतव्य से होते देखे गए हैं।

5. **विद्यालय में विशेष अवसरों पर जन-प्रतिनिधियों का आगमन** — आजकल विद्यालयों ने माननीय सांसदों/विधायकों से विद्यालय के लिए संसाधन जुटाने के लिए एक विशेष किस्म के नवाचार को अपनाया है। इसमें होता यह है कि किसी विशेष अवसर पर (यह प्रायः विद्यालय के प्रवेशोत्सव या वार्षिकोत्सव होते हैं) माननीय सांसद/विधायक या सक्षम जनप्रतिनिधि को मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित करके सांसद/विधायक/ज़िला निधि से विद्यालय के लिए संसाधन प्रदान करने का अनुरोध करना। ऐसे में विद्यालय में माननीयों के आगमन के साथ ही प्रशासनिक एवं शिक्षाधिकारियों की उपस्थिति स्वाभाविक रूप से हो जाती है। इस अवसर का उपयोग कतिपय प्रशासनिक एवं शिक्षाधिकारी विद्यालय निरीक्षण के लिए करते हैं। यह एक

तरह से खानापूर्ति ही होती है। इसका विद्यालय को अकादमिक अनुसमर्थन से कोई संबंध नहीं होता है। हाँ, इसका एक लाभ जरूर होता है कि विद्यालय को माननीयों की घोषणा के अनुरूप संसाधन मिलने की उम्मीद बंध जाती है और कभी-कभी पूरी भी हो जाती है। ऐसे आयोजनों से पूर्व अपने विद्यालय के सकारात्मक पक्ष को सामने लाने के लिए अतिरिक्त प्रयास किए जाते हैं ताकि इसका विद्यालय की अकादमिक प्रगति पर कुछ-न-कुछ सकारात्मक असर तो जरूर पड़ता होगा।

6. **अभिभावकों/समुदाय के लोगों का आगमन** — अभिभावक यदि अपने पाल्यों की पढ़ाई के लिए जागरूक हों और उनके पास समय उपलब्ध हो तो विद्यालय आकर अपने बच्चों की प्रगति के बारे में जानने-समझने की कोशिश करते हैं। यदि इस क्रम में विद्यालय एवं अभिभावकों में बेहतर संवाद स्थापित हो जाए तो शिक्षकों को यह जानने-समझने में मदद मिलती है कि अभिभावकों की अपेक्षाएँ क्या हैं? यदि विद्यालय/शिक्षक के दायरे में हैं तो इन्हें किस प्रकार से पूरा किया जा सकता है? यह संबंध मजबूत हो जाने पर समुदाय, विद्यालय हेतु भौतिक संसाधन जुटाने का प्रयास करते देखे गए हैं, बहुत-से विद्यालयों में शिक्षकों की कमी के दृष्टिगत समुदाय द्वारा अपने संसाधनों से अस्थायी शिक्षकों की व्यवस्था भी की गई है। यह एक सकारात्मक संबंध की सृजना करता है। इसके विपरीत विद्यालयों में समुदाय से कुछ ऐसे लोगों

का आगमन भी होता है, जिनकी रुचि विद्यालय के निर्माण कार्य संबंधी ठेके या फिर कुछ ऐसे ही मामलों में होती है। ये प्रधानाध्यापक/शिक्षक पर अनियमितता का दोषारोपण करते हुए अपने पक्ष में माहौल बनाने का प्रयास करते हैं। यह सब बच्चों के सामने घटित हो रहा होता है। ऐसी स्थिति शिक्षक की हैसियत को तो प्रभावित करती ही है, साथ ही शिक्षक के बारे में बच्चों के मन में जो मूल्य विकसित हो रहे हैं, उन पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि छोटे बच्चों में मूल्यों के बीजारोपण हेतु शिक्षक का आचरण-व्यवहार एक रोल मॉडल के समान होता है।

7. ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के अभिकर्मियों द्वारा विद्यालय अनुश्रवण—

यह निरीक्षण की प्रशासनिक भयावहता की तुलना में सहज माना जाता है। ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान फ़ैकल्टी से यह अपेक्षा की जाती है कि वहाँ क्या घटित हो रहा था? इसको ही न देखें, वरन् क्यों घटित हो रहा था? इस बारे में शिक्षक से बात करें, उनका पक्ष सुनें। अनुश्रवण का स्वरूप भी प्रायः आकस्मिक ही होता है और न ही विद्यालय/शिक्षक को इसकी पूर्व सूचना दी जाती है। अच्छा हो यदि अनुश्रवण की पर्याप्त समय पूर्व ही सूचना दे दी जाए तथा यह भी स्पष्ट कर दिया जाए कि अनुश्रवण में शिक्षण के कौन-कौन से बिंदुओं का अनुश्रवण किया जाएगा। दूसरी ओर अनुश्रवणकर्ता पूरे विद्यालय समय में विद्यालय रहना पसंद नहीं करते (संभवतः कुछ उत्साही फ़ैकल्टी ऐसा करती

भी हों, परंतु यह आम अभ्यास तो नहीं है।), अतः अनुश्रवण का मुख्य उद्देश्य विद्यालय को अनुसमर्थन देना पूर्ण नहीं हो पाता। विद्यालय/शिक्षक ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के अभिकर्मियों के विद्यालय अनुश्रवण को सहजता से लेते हैं। यदि ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान फ़ैकल्टी से विश्वासाश्रित संबंध है तो शिक्षक अपनी अकादमिक समस्याओं को साझा भी करते हैं। इसमें बस एक खामी प्रमुख रूप से नज़र आती है, वह है निरंतरता की कमी। विद्यालय को अनुसमर्थन देना एक सतत प्रक्रिया है, जिसमें अनुश्रवणकर्ता को उस विद्यालय में बार-बार जाने की आवश्यकता होगी, शिक्षक से विश्वासाश्रित संबंध स्थापित करने होंगे। अकादमिक अनुसमर्थन देने हेतु गहन तैयारी करनी होगी। एक बार किसी विद्यालय का अनुश्रवण कर देने मात्र से इस लक्ष्य को हासिल नहीं किया जा सकता है।

विद्यालय अनुश्रवण एवं अनुसमर्थन का प्रभावी तरीका क्या हो?

विद्यालयों के निरीक्षण, अनुश्रवण एवं विभिन्न आगमनों का विश्लेषण करने के बाद यह विचार करना ज़रूरी हो जाता है कि विद्यालय को अनुसमर्थन देने के लिए विद्यालय में आगमनकर्ताओं (निरीक्षणकर्ता, अनुश्रवणकर्ता या अनुसमर्थनकर्ता चाहे किसी भी विहित नाम से संबोधित किया जाए) को कौन-सा तरीका एवं व्यवहार अपनाना चाहिए जिससे विद्यालय को अपने शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद मिल सके। इसके लिए सबसे पहले अनुसमर्थन की स्पष्टता ज़रूरी है।

अकादमिक संदर्भों में अनुसमर्थन का अर्थ है 'शिक्षक को शिक्षण-अधिगम से संबंधित मामलों/समस्याओं के समाधान के लिए अकादमिक समाधान के मार्ग में शिक्षक का सहयात्री बनना, समाधान को लागू करने हेतु शिक्षक का सशक्तिकरण करना। अनुसमर्थन में अनुसमर्थनकर्ता एवं शिक्षक मिलजुलकर समस्या समाधान की ओर बढ़ते हैं। अनुसमर्थनकर्ता अपना विचार/समाधान थोपता नहीं है। इसमें शिक्षक की पहचान/हैसियत (इनका ज़िक्र ऊपर आ चुका है) की संवेदनशीलता का खयाल रखा जाता है।

अनुसमर्थन के लिए निम्न मूलभूत बातों की आवश्यकता होती है —

- अनुसमर्थनकर्ता एवं शिक्षक के मध्य अनुसमर्थन के उद्देश्यों को लेकर स्पष्टता।
- अनुसमर्थनकर्ता एवं शिक्षक के मध्य विश्वासाश्रित संबंध। यह संबंध इस दृष्टि से बहुत ही संवेदनशील है कि शिक्षक के सुधार/विकास के क्षेत्रों (Area of Development) को किसी अन्य से साझा न करने हेतु आश्वासन होना चाहिए। तभी शिक्षक अपनी समस्या को सही परिप्रेक्ष्य में अनुसमर्थनकर्ता के समक्ष रख सकेंगे। हाँ, शिक्षक की उपलब्धियों को अवश्य साझा करना चाहिए और इसका संपूर्ण श्रेय भी उस शिक्षक विशेष को ही दिया जाना चाहिए।
- मिलजुलकर समाधान खोजने के प्रति लचीलापन।
- अनुसमर्थन, शिक्षक के सशक्तिकरण के क्रम में होना चाहिए, न कि अनुसमर्थनकर्ता की अकादमिक सत्ता को स्थापित करने हेतु।

अनुसमर्थन में अनुसमर्थनकर्ता, शिक्षक के मेंटर (Mentor) के रूप में कार्य करता है। इस प्रक्रिया में समस्या समाधान के विकल्प एवं उनके परिणामों के बारे में विकल्प सुझाए जाते हैं, परंतु अंतिम निर्णय लेने के लिए शिक्षक को स्वतंत्रता होती है। अनुसमर्थनकर्ता तो सिर्फ निर्णय लेने एवं उसे लागू करने में शिक्षक की हिचक को दूर करने में मदद करता है। इस प्रकार यह शिक्षक को सशक्त करने की प्रक्रिया है।

- अनुसमर्थन के क्रम में शिक्षक की किसी भी भूमिका में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता (जैसे— पढ़ाने-लिखाने का विशेष तरीका, सिखाने के लिए अनुसमर्थनकर्ता द्वारा स्वयं ही कक्षा लेना। यदि ऐसा करना ज़रूरी ही है तो इसके लिए शिक्षक से पूर्व अनुमति हो और बच्चों को कहीं भी ऐसा न लगे कि उनके शिक्षक को कोई सिखा रहा है। फिर शिक्षक के लिए वही तरीका अपनाना बाध्यकारी नहीं होना चाहिए। संभव है शिक्षक के साथ सतत संवाद बनाए रखकर शिक्षक इससे भी बेहतर तरीका स्वयं खोज लें।)। यह समस्या हल करने की शिक्षक की क्षमता संवर्द्धन के क्रम में होता है।
- अनुसमर्थन, वस्तुतः शिक्षक को समस्या समाधान में मदद करने का एक तरीका है, शिक्षक की प्रत्यक्ष मदद करना नहीं है। इन दोनों में बहुत सूक्ष्म अंतर है, वह अंतर शिक्षक की अधिभावी पहचान से संदर्भित है।

- अनुसमर्थन में निरंतर फीडबैक प्रक्रिया अपनाई जाती है। अनुसमर्थनकर्ता एवं शिक्षक आपस में एक-दूसरे को लगातार फीडबैक देकर समस्या समाधान तक पहुँचते हैं। इसके लिए दोनों के मध्य विश्वासाश्रित संबंध होना बहुत ज़रूरी है।
- अनुसमर्थन में अनुसमर्थनकर्ता कभी भी अपने निर्णय शिक्षक पर थोपता नहीं है। वह तो समस्या समाधान हेतु केवल विकल्प सुझाता है और उन विकल्पों में चयन की स्वतंत्रता देता है। ऐसा करके शिक्षक को प्रयासों की अधिकारिता (Ownership) लेने के लिए तैयार करता है। अनुसमर्थनकर्ता को परिणामों की जवाबदेही में सहभागिता करनी चाहिए, परंतु सफलता का पूरा श्रेय संबंधित शिक्षक को देना चाहिए।

इसके लिए ज़रूरी है कि वर्तमान में क्रियाशील प्रशासकीय ढाँचा विद्यालयों का निरीक्षण ज़रूर करे, परंतु इसके द्वारा यह सुनिश्चित किया जाए कि विद्यालय की भौतिक एवं अकादमिक ज़रूरतों के लिए आवश्यक निर्णय लें। विद्यालय/शिक्षकों को अकादमिक अनुसमर्थन देने के लिए ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, ब्लॉक स्तर पर ब्लॉक संदर्भ व्यक्ति एवं संकुल स्तर पर संकुल संदर्भ व्यक्ति के अकादमिक ढाँचे को गतिशील किया जाए। अकादमिक अनुश्रवण एवं अनुसमर्थन हेतु ज़रूरी ज्ञान, कौशल एवं मूल्यों से संवर्द्धित किया जाए। प्रशासकीय तंत्र शिक्षक एवं विद्यालय की भौतिक ज़रूरतों को संबोधित करें तथा अकादमिक तंत्र शिक्षक/विद्यालयों की अकादमिक ज़रूरतों के लिए काम करें।

अनुसमर्थन की प्रक्रियाएँ

अनुसमर्थन न तो एक बार अपनाई जाने वाली प्रक्रिया है और न ही आकस्मिक रूप से किया जाने वाला कोई कार्य। इसमें निरंतरता एवं विश्वासाश्रित संबंधों की निर्मिति की ज़रूरत होती है। अनुश्रवण की प्रक्रिया में मुख्य रूप से निम्नलिखित बिंदु सम्मिलित हैं—

1. **विश्वासाश्रित संबंधों की निर्मिति** — यह संबंध एक अनुश्रवण में बन जाना कठिन है, इसके लिए बार-बार उस विद्यालय जाने एवं शिक्षक से संवाद स्थापित करने की ज़रूरत होती है।
2. **शिक्षक की समस्या / चुनौती को समझना**—इसके लिए अनुसमर्थनकर्ता को शिक्षक की स्थिति में स्वयं को रखकर देखना होता है। इसके लिए सहानुभूति के बजाय तदनुभूति (Putting own feet in another person's shoes) की आवश्यकता होती है। तभी आपसी संबंध विश्वासाश्रित संबंधों में परिणित होते हैं।
3. **समस्या समाधान हेतु विकल्प उपलब्ध कराना** — शिक्षक की अकादमिक समस्या शिक्षण के ज्ञान क्षेत्र या कौशल से संबंधित हो सकती है। ज्ञान क्षेत्र से संबंधित समस्या के समाधान के लिए अनुसमर्थनकर्ता, शिक्षक को उपयोगी साहित्य उपलब्ध करा सकता है या फिर उन स्रोतों की जानकारी दे सकता है, जहाँ से यह आसानी से उपलब्ध हैं। आजकल इंटरनेट के युग में इस प्रकार का साहित्य/उपयोगी सामग्री एक क्लिक में उपलब्ध है। इसी प्रकार कौशल से संबंधित समस्या के समाधान के लिए

- ऑडियो-वीडियो सामग्री उपलब्ध कराई जा सकती है।
4. **विकल्पों के चयन एवं लागू करने की शिक्षक को स्वायत्तता देना** — अनुसमर्थन के इस चरण में ज्ञान एवं कौशल से संबंधित समस्या के समाधान के लिए सुझाए गए विकल्पों में से विकल्प चयन की शिक्षक को स्वायत्तता देनी ज़रूरी है, शिक्षक पर कोई भी विकल्प थोपा नहीं जाना चाहिए। हाँ, यह ज़रूरी है कि सर्वोत्तम विकल्प चयन में शिक्षक कठिनाई महसूस कर रहे हों तथा मदद की ज़रूरत बता रहे हों तो इसमें निर्णय लेने में शिक्षक की मदद की जानी चाहिए, अपना निर्णय तो किसी भी दशा में आरोपित नहीं किया जाना चाहिए। वस्तुतः अनुसमर्थन विद्यालय/शिक्षक को सशक्त बनाने की प्रक्रिया है, इसके लिए ज़रूरी है कि शिक्षक निर्णयों की अधिकारिता (Ownership) लें।
5. **परिणामों की जवाबदेही** — अनुसमर्थन में अनुसमर्थनकर्ता, शिक्षक के मेंटर (Mentor) की भूमिका में होता है, परिणामों की सफलता के लिए स्वयं आश्वस्त रहता है और शिक्षक को आश्वस्त करता है। फिर भी परिणाम में असफल रहने पर इसकी ज़िम्मेदारी लेता है। यह तथ्य शिक्षक को अनुसमर्थनकर्ता पर समग्र विश्वास करने का सशक्त आधार देता है।
6. **सफलता की अधिकारिकता (Ownership) शिक्षक को देना** — यह अनुश्रवण प्रक्रिया की सफलता की कुंजी है कि अनुसमर्थनकर्ता, सफल परिणामों के लिए पूरा श्रेय शिक्षक को दें। यदि इस सफलता को किसी अन्य फ़ोरम में साझा करना हो, तब भी इस बात की पूरी ईमानदारी बरती जाए कि इसका श्रेय शिक्षक को ही दिया जाए। यह व्यवहार अन्य विद्यालयों के शिक्षकों को अनुसमर्थन प्रक्रिया में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित करेगा।

संदर्भ

- गाँधी, एम. के. 1957. *अक्षर ज्ञान— 'सत्य के प्रयोग' — आत्मकथा*. अनुवादक, काशिनाथ त्रिवेदी. नवजीवन ट्रस्ट, नवजीवन प्रकाशन मंदिर.
- भट्टाचार्यजी, जयीता. 2015. प्रोग्रेस ऑफ़ टीचर एजुकेशन इन इंडिया – ए डिस्कशन फ़्रोम पास्ट टु प्रेज़ेंट. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ ह्यूमैनिटीज़ एंड सोशल साइंस स्टडीज़ (IJHSSS) ए पियर – रिव्यूड-बाइ, मंथली बायलिंग्वल रिसर्च जर्नल*, ISSN: 2349-6959 (ऑनलाइन), ISSN: 2349-6711 (प्रिंट), वॉल्युम-II, वॉ-I, जुलाई-2015. पृ. 213-222. स्कॉलर पब्लिकेशन, करीमगंज, असम.
- शिक्षा मंत्रालय. 1964-66. *शिक्षा एवं राष्ट्रीय विकास*. शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली.
- सय्यद, नुरुल्लाह और जे. पी. नायक. 1962. *ए स्टूडेंट्स हिस्ट्री ऑफ़ एजुकेशन इन इंडिया (1800-1960)*. मैकमिल्लन एंड कॉ. लिमि. बॉम्बे, कलकत्ता, मद्रास, लंदन, सेंट मार्टिन प्रेस ईकोपोरिट, न्यू यॉर्क.

लेखकों के लिए दिशानिर्देश

लेखक अपने मौलिक लेख/शोध-पत्र सॉफ़्ट कॉपी (जहाँ तक संभव हो यूनीकोड में) के साथ निम्न पते या ई-मेल journals.ncert.dte@gmail.com पर भेजे –

अकादमिक संपादक

भारतीय आधुनिक शिक्षा

अध्यापक शिक्षा विभाग

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016

लेखक ध्यान रखें कि लेख/शोध-पत्र —

- सरल एवं व्यावहारिक भाषा में हो, जहाँ तक संभव हो लेख/शोध-पत्र में व्यवहारिक चर्चा एवं दैनिक जीवन से जुड़े उदाहरणों का समावेश करें।
- विषय-वस्तु लगभग 2500 से 3000 शब्दों या अधिक में हिंदी फ़ॉन्ट में टंकित हो।
- विषय-वस्तु के साथ ही तालिका एवं ग्राफ़ हो तथा व्याख्या में तालिका में दिए गए तथ्यों एवं ग्राफ़ का उल्लेख हो।
- ग्राफ़ अलग से Excel File में भी भेजे।
- विषय-वस्तु में यदि चित्र हो, तो उनके स्थान पर खाली बॉक्स बनाकर चित्र संख्या लिखें एवं चित्र अलग से JPEG फ़ॉर्मेट में भेजे, जिसका आकार कम से कम 300 dots per inch (dpi) हो।
- लेखक/शोधक अपना संक्षिप्त विवरण भी दें।
- संदर्भ वही लिखें जो लेख/शोध-पत्र में आए हैं, अर्थात् जिनका वर्णन लेख/शोध-पत्र में किया गया है। संदर्भ लिखने का प्रारूप एन.सी.ई.आर.टी. के अनुसार हो जैसे—

पाल, हंसराज. 2006. *प्रगत शिक्षा मनोविज्ञान*. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.

लेख —

- लेख की वर्तमान परिप्रेक्ष्य पर आधारित सार्थक प्रस्तावना लिखें, जो आपके लेख के शीर्षक से संबंधित हो, अर्थात् वर्तमान में शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा पर राष्ट्रीय या राज्य स्तर पर जो नीतिगत परिवर्तन आए हैं, उनका समावेश करने का प्रयास करें।
- निष्कर्ष या समापन विशिष्ट होना चाहिए।

शोध-पत्र —

- शोध-पत्र की वर्तमान परिप्रेक्ष्य पर आधारित सार्थक प्रस्तावना एवं औचित्य लिखें, जो आपके शोध-पत्र के शीर्षक से संबंधित हो, अर्थात् वर्तमान में शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा पर राष्ट्रीय या राज्य स्तर पर जो नीतिगत परिवर्तन आए हैं एवं जो शोध कार्य हुए हों, उनका समावेश करने का प्रयास करें।
- न्यादर्श की पूरी जानकारी लिखें अर्थात् न्यादर्श की प्रकृति, न्यादर्श चयन का तरीका आदि।
- प्रदत्त संकलन के लिए उपयोग किए गए उपकरणों की संक्षिप्त जानकारी।
- प्रदत्त विश्लेषण में तथ्यों का गुणात्मक आधार बताते हुए विश्लेषण करें।
- उद्देश्यानुसार निष्कर्ष लिखें तथा समापन विशिष्ट होना चाहिए।
- शोध-पत्र के शैक्षिक निहितार्थ भी लिखें, अर्थात् आपके शोध निष्कर्षों से किन्हें लाभ हो सकता है।

रजि. नं. 42912/84

विद्यया ऽ मृतमश्नुते



एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING